वनस्पति वाणी

वर्ष : 3 सितम्बर, 1992 अंक : 3

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
BOTANICAL SURVEY OF INDIA

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

वनस्पति वाणी

वर्ष : 3 सितम्बर 1992 अंक : 3

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

मुखपृष्ठ का चित्र : एपिफाइलम ट्रन्केटम (Epiphyllum truncatum) का एक मनोरम पुष्प ।

सम्पादक मण्डल

डा० बी० डी० शर्मा	प्रधान सम्पादक
डा० डी० एम० वर्मा	सदस्य
डा० आर० के० चक्रवर्ती	सदस्य
डा० वि० मुद्गल	सदस्य
श्री ए० आर० के० शास्त्री	सदस्य
डा० एस० एल० गुप्त	सदस्य

सम्पादन सहयोग

श्री नवीन चौधरी

वनस्पति वाणी में प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता, प्रामाणिकता तथा व्यक्त विचारों के लिए लेखक उत्तरदायी हैं ।

विषय-क्रम

शैवाल प्रोद्यौगिकी का खाद्य उत्पादन में योगदान : बी० डी० शर्मा एवं एस० एल० गुप्त	1
मांसल-मरुद्भिद् : आर० के० चक्रवर्ती एवं ए० के० बनर्जी	3
शैवाल : एक सामान्य परिचय : जी० पी० राय	5
प्रकृति की अनमोल धरोहर : आर० सी० श्रीवास्तव	7
चूका — सिक्किम का एक खूबसूरत शाकीय पौधा : सर्वेश कुमार	10
विभूषक वेणु : एच० एस० पाण्डेय, आर० के० चक्रवर्ती एवं ए० के० बनर्जी	11
अतीत के कुछ अविस्मरणीय क्षण : मेघ सिंह	19
सेहत हजार नियामत है : विजय कृष्ण	25
पादप दर्शन : आर० सी० श्रीवास्तव	29
हम टूटे रिश्ते को जोड़ रहे हैं : नवीन चौधरी	30
समाचार	31
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के कुछ महत्वपूर्ण नये प्रकाशन	32

यदायुष्यं चिरं देवाः सप्तकल्पान्तजीविषु
ददुस्तेनायुषा युक्ता जीवेम शरदः शतम्
दीर्घा नागा नगानद्योनन्ताः सप्तार्णवा दिशः
अनन्तेनायुषा तेन जीवेम शरदः शतम्
सत्यानि पञ्चभूतानि विनाशरहितानिच
अविनाश्यायुषा तद्वज्जीवेम शरदः शतम्

शैवाल प्रोद्यौगिकी का खाद्य उत्पादन में योगदान

बी० डी० शर्मा एवं एस० एल० गुप्त

पृथ्वी पर स्थित सभी सूक्ष्मजीवों जैसे जीवाणु (Bacteria), विषाणु (Viruses) यीस्ट (Yeast) एवं शैवालों (Algae) में एक कोशीय प्रोटीन (Single Cell Protein) के उत्पाद की क्षमता है। इनमें शैवालों का स्थान कम लागत, प्रचुर उपलब्धता एवं सरल वृद्धिदर के कारण प्रमुख है। इन शैवालों को प्राकृतिक रूप से कार्बन-डाइ-आक्साइड तथा सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में खुले तालाबों आदि में बहुतायत मात्रा में उगाया जा सकता है। शैवालों का वृहद् उत्पादन एवं संवर्द्धन (Mass Culture) खाद्य उत्पाद कार्यक्रमों में कृषि एवं औद्योगिक किण्वनीकरण के संयुक्त कार्य का अच्छा उदाहरण है। इस दिशा में सन् 1940 से ही प्रयास किये जा रहे हैं—सरकारी, अर्द्धसरकारी एवं निजी स्तर पर। वर्तमान में कई निजी उपक्रम भी शैवालों से विटामिन सी एवं स्टीरायड के उत्पादन हेतु संलग्न है।

खाद्य उत्पादन में योगदान के अलावा शैवालों का उपयोग रंग-रोगन, औषधि एवं खाद्य के रूप में किया जा रहा है। इन प्रमुख शैवालों में हरे शैवाल, नीलहरित शैवाल, डाएटम एवं अन्य कुलों के लाल शैवाल शामिल हैं। एक कोशीय हरे शैवाल में प्रमुख क्लोरेला का महत्वपूर्ण स्वास्थ्य भोजन (Health Food) के रूपमें व्यावसायिक उत्पादन किया जा चुका है। वर्तमान में क्लोरेला, स्पाइरुलिना का उत्पादन जापान, ताइवान, मेक्सिको, इसरायल, थाईलैण्ड एवं संयुक्त राज्य अमेरिका में किया जारहा है। शुष्क आधार पर शैवालिक स्वास्थ्य भोजन (Algae health Food) का उत्पादन वर्तमान में 2000 मेट्रिक टन प्रति वर्ष है। इन शैवालों को तालाबों में या फर्मेन्टर में उत्पादन के बाद स्प्रे द्वारा सुखाया जाता है और फिर पाउडर या टिकिया के रूप में बेचा जाता है। कुछ प्रमुख कुलों के शैवालों के नाम, उनके उत्पाद एवं उपयोग का विवरण तालिका 1 में दिया गया है :

तालिका 1 : खाद्य उद्योग में उपयोगी महत्वपूर्ण शैवाल एवं उनके उत्पाद—

कुल/प्रजाति	उत्पाद	उपयोग
1. लाल शैवाल	समस्थानिक उत्पाद	औषधि अनुसंधान
2. नील हरित शैवाल	फाइकोबिली प्रोटिन	भोजन रंग एवं औषधि अनुसंधान (कैंसर प्रतिरोधी, एण्टीबायोटिक्स)
3. ड्यूनेलिएला	बीटा-कैरोटीन	भोज्य सहयोगी पदार्थ एवं भोजन, रंग
4. हरित शैवाल एवं डाएटम	जैन्थोफिल	मुर्गी के बच्चों हेतु भोजन
5. हरित शैवाल	विटामिन सी एवं विटामिन ई	विटामिन
6. क्लोरेला, स्पाइरुलिना	स्वास्थ्य वर्द्धक भोजन	पोषण
7. क्लेमाइडोमोनास	मृदा इनाकुलम	मृदा संरक्षण

कुल/प्रजाति	उत्पाद	उपयोग
8. क्लोरेला एवं नील हरित शैवाल	अमीनो एसिड	प्रोलीन, आरजीनिन एवं एस्पार्टिक एसिड
9. हरित शैवाल/डाएटम	शाक एवं समुद्री तेल	भोजन, भोज्यपदार्थ एवं पोषण

जापान, चीन एवं अन्य समुद्रतटीय देशों में स्पाईरुलिना का वृहद्स्तर पर शैवाल प्रोद्यौगिकी तथा आउटडोर मास कल्चर (Outdoor Mass Culture) में उपयोग लगातार बढ़ता जा रहा है जिसके कारण स्पाइरुलिना अन्य परम्परागत शैवालों जैसे पोरफाइरा, लैमिनेरिया एवं अन्य समुद्री कुल के पौधों को पीछे छोड़ता जारहा है। इसका कारण स्पाइरुलिना में उपस्थित पदार्थ है जिनका सूक्ष्म विवरण तालिका 2 में दिखाया गया है :

तालिका 2 : स्पाइरुलिना में उपस्थितपदार्थ (प्रतिशत में)

प्रोटीन	....	65
कार्बोहाइड्रेट	....	19
क्लोरोफिल एवं बाइल पिगमेंट	....	6
लिपिड	....	4
तन्तु	....	3
राख	....	3

अन्य कुलों की अपेक्षा क्रस्टेशियन कुल के जीवोंके लिए शैवालों का उपयोग भोजन के रूपमें काफी किया जाता है। सन् 1971 में आर्नाल्ड ने परीक्षणों से यह सिद्ध किया कि डेफ्निा के लिए नील हरित शैवालों की अपेक्षा हरित शैवाल ज्यादा उपयोगी हैं।

बाहर खुले मैदानों में (Outdoor culture) शैवालों का व्यावसायिक उत्पादन वातावरण पर काफी निर्भर करता है। विभिन्न देशों के विभिन्न वातावरण के अलावा इस बात पर भी निर्भर करता है कि उनका संवर्द्धन साफ पानी में किया जारहा है या प्रदूषित जल में। फिर भी 35-40 ग्राम$^{-2}$ प्रतिदिन उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है और 300 दिन के औसत वृद्धि समय में 25 ग्राम$^{-2}$ प्रतिदिन औसत या 75 टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष उत्पादन प्राप्त किया जाता है। आउटडोर संवर्द्धन के लिए प्रोद्यौगिकी स्तर पर निम्नलिखित परिस्थितियाँ आवश्यक है—

1. उच्च अनुकूल दशा जो एक जाति की प्रचुरता में सहायक हो।

2. उन शैवाल प्रजातियों के चयन में प्राथमिकता जो अपने से वृद्धि कर सकें और तालाबों में छा जाये, तथा

3. ऐसी विधियों का उपयोग जिससे प्रदूषण कम से कम हो।

इतने परीक्षणों के बावजूद यह कहा जा सकता है कि शैवालों का भोज्य पदार्थ हेतु उत्पादन में प्रोद्यौगिकी का विकास अपनी प्रारम्भिक परीक्षणात्मक अवस्था में है एवं इस दिशा में और अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है जिससे मानव जाति का भला हो सके।

★

मांसल-मरुद्भिद्

रथीन कुमार चक्रवर्ती एवं अरूप कुमार बनर्जी

वनस्पति जगत में मांसल-मरुद्भिद् ने अपना एक विशेष स्थान बना रखा है। इसकी आकृति, गठन, तना, पत्तियों की विचित्रता, रंग एवं फूलों की सुन्दरता ने तो सभी वनस्पति प्रेमियों को आकर्षित कर एक सूत्र में बांध रखा है। अमाजान की सौन्दर्यपूर्ण प्रसिद्ध वनस्पति करनीजिया जाइगेनसिया (Carnegia gigantea) भी इसी मांसल वर्ग का पौधा है। वे पौधे जो अपने तना, पत्तियों एवं जड़ों में भी पानी को धारण कर रख सकते हैं—उन पौधों को मांसल पौधा या सकुलैन्टस् (Succulents) कहा जाता है।

मांसल-मरुद्भिद् पौधों की चर्चा करते समय सर्व प्रथम कैकटेसी कुल के पौधों की ही याद आती है। इसके अलावा दूसरे और बहुत सारे कुलों का भी उल्लेख किया जा सकता है जिसमें इस प्रकार के पौधे होते हैं जैसे—युफोरबियेसी (Euphorbiaceae), ऐसक्लीपिडीयेसी (Asclepidaceae), अमेरीलिडेसी (Amaryllidaceae) ऐनाकारडियेसी (Anacardiaceae), एपोसाइनेसी (Apocynaceae), ऐरेसी (Araceae), क्रासुलेसी (Crassulaceae), पेडालियेसी (Pedaliaceae), लिलियेसी (Liliaceae) इत्यादि के समावेश से अनेकों वनस्पतियों की सूची बन सकती है। अधिकतर मांसली पौधों के तनाओं एवं पत्तियों में संचय करने की क्षमता होती है एवं इसी कारण से पौधों का तना बहुत ही विचित्रमय होता है जैसे-कभी मोटी एवं चौड़ी तो कभी गेंद जैसी गोलाकृति या खम्भों की तरह लम्बी। कुछ फूलों में पत्तियाँ बहुत मोटी होती हैं जैसे—क्रेसुलेसी (Crassulaceae), मिसेम-ब्रायाऐनथेमयेसी (Mesembryanthemaceae), ब्रायोफिलेसी (Bryophyllaceae), ऐपोसाइनेसी, कनबल-बुमुलेसी, कुकुरबिटेसी इत्यादि कुल वाले पौधों की जड़ें भी पानी संचय करने की क्षमता रखती है। इन परिवर्तित जड़ों को कॉडेक्स (Caudex) कहते हैं।

जैसा कि कहा गया है मांसल पौधों में जल संचय कर रखने की क्षमता होती है एवं इसलिये इनकी आकृति या आकारिकी अलग होती हैं। आम लोगों की धारणा है कि इस किस्म के पौधे या तो मरुस्थल में अथवा जहाँ पानी की कमी हो वहाँ पाये जाते हैं। परन्तु इसके विपरीत इन पौधों का विस्तार पृथ्वी के सभी जगहों में समुद्र तट से पहाड़ों एवं मैदानी क्षेत्रों में भी पाये जाते हैं। इस प्रजाति के कुछ पौधे अतिवृष्टि वाले अंचल में उपरिरोही (epiphyte) रूप में पाये जाते हैं। लेकिन यह सच है कि सभी प्रकार के मांसल पौधों की आकारिकी एवं आन्तरिक-आकारिकी में विशेषता रहती है एवं इसकी क्रिया-प्रक्रियाओं में भी भिन्नता होती है।

ये सब विविधताएँ पौधों के वाष्पोत्सर्जन (Transpiration) को बन्द या कम करने के कामों में लगता है। कुछ पौधों का तना मोम की पतली सतह से ढका होता है तो कोई कांटेदार भी होते हैं या कोई रेशमी मुलायमदार रोमों से ढके होते हैं तो कोई नुकीले कांटेदार भी होते हैं। पत्तियों से पानी निकलने का छिद्र (Stomata) छिपा हुआ रहता है और संख्या में भी कम होते हैं तथा कोषों का गठन भी अलग होता है। यह अवलोकन किया गया है कि ये स्टोमाटा केवल रात में ही खुलते हैं एवं सूर्योदय के साथ-साथ बन्द हो जाते हैं। जल संचय करने वाले कोषों में एक चिपचिपा पदार्थ रहता है जिसे अंग्रेजी में "म्यूसिलेज"

(Glue) कहते हैं जो इन कोषों का पानी संचय करने की क्षमता बढ़ा देता है। पत्तियों में शर्करा जमा होते हैं और जैविक ऊर्जा नियंत्रणकारी फासफेटों (ए०डी०पी० एवं ए०टी०पी०) के परिमाण भी ज्यादा रहते हैं। पत्तियों में काइनिटिन (Kinetin) नामक यौगिक इसे मुरझाने से रोकता है। यह काइनिटिन एमिनो-अम्लों के संचालन में भी सहायक होते हैं। मांसल पौधे का प्रकाश-संश्लेषण (Photosynthesis) भी विभिन्न प्रकार के होते हैं। अंधेरे में कार्बन-डाइ-आक्साईड (CO_2) की सहायता से ऑक्सालोऐसिटिक (Oxaloacetic) एवं मैलिक (malic) अम्ल तैयार करता है जो कि सूर्य के किरणों के सम्पर्क में आकर एवं कैलविन (Calvin) चक्र केअनुसार जैव शर्करा तैयार करता है जो कि पौधे के लिये पौष्टिक होता है। इसके अलाबा कुछ-कुछ मांसल पौधा के जाति में अधिक कार्यकारी 'सी$_4$' (C_4) किस्म की प्रकाश-संश्लेषण भी पाई जाती है।

मांसल पौधों को खुली जगहों में विशेषकर गमलों में या कांच के बने प्रकोष्ठों में लगाया जा सकता है। कुछ मांसल पौधे तो वृक्ष की तरह बड़े होते हैं जैसे - सेरियस (Cereus), सेफालो-सेरियस (Cephalocereus), पेनियो-सेरियस (Peniocereus) आदि। कुछ तो लता या आरोही भी होते हैं जैसे—सेरोपिजीया (Ceropegia), हाइलोसिरस (Hylocereus), सेलेनिसिरस (Selenicereus) कुछ गोलाकार जैसे - ऐकाईनोकैकटस (Echinocactus), फेरोकैकटस (Ferocactus), नोटोकैक्टस (Notocactus) एवं कुछ खम्भों की तरह भी होते हैं जैसे—युफोरबिया, सेफालीसिरस आदि। इसके अलावा कुछ आकृति में बहुत ही छोटे और कांटों से ढंके रहते हैं।

कैक्टस एवं अन्य मांसल पौधे सूखे हुए एवं मोराम जैसे मिट्टी में उग सकते हैं। सर्व प्रथम ध्यान रखना होता है कि मिट्टी में ज्यादा पानी नहीं रहना चाहिये एवं गमले से पानी के निष्कासन का बन्दोबस्त रहना चाहिये। इनको लगाने के पहले मिट्टी को बना लेना उचित होता है। मिट्टी के साथ रेत, लकड़ी का कोयला का चूर्ण एवं सड़े पत्तों का खाद अच्छे से मिला लेना चाहिये। गमलों के छिद्र को गमलों के टुकड़ों से ढंक देना चाहिये जिससे कि पानी आसानी से निकल जाय एवं आर्द्रता बनी रहे। गमलों की सजावट के लिये छोटे-छोटे सफेद स्फटिक पत्थरों को गमलों के ऊपरी भाग में बिछाया जा सकता है। उन्हें कटिंग (Cutting) से भी उगाया जा सकता है। ब्रायोफाईलुम (Bryophyllum) एवं केलान्चू (Kalanchoe) की पुरानी पत्तियों की कोशिकाओं से भी छोटे पौधे निकल जाते हैं। इन्हें अलग कर नये पौधे उगाये जा सकते हैं। बीजों या कटिंग से पौधे तैयार करने का उचित समय—वर्षा के अन्त में या बसन्तकाल है। इसके लिये भी उद्यान की मिट्टी, सड़े पत्तों की खाद 1 : 1 अनुपात में मिश्रण कर तैयार किये जा सकते हैं। पानी देने के समय विशेष ध्यान देना चाहिये जिससे कि केवल आर्द्रता बनी रहे नही तो वे सड़ एवं सूख जाते हैं।

ठण्ड के दिनों में इन मांसल पौधों में ग्राफ्टिंग भी आसानी से किया जा सकता है। इससे भी विभिन्न किस्म के रुचिकर एवं रोचक पौधे तैयार हो सकते हैं। ये मांसल पौधे विशेषकर कैकटस जाति के पौधे विभिन्न आकृति के होते हैं जो कि देखने में सुन्दर या मनोरम होते हैं। गोलाकार एवं बुटीदार पौधे जैसे मैमिलेरिया (Mammelaria), ऐसट्रोफाइटुम (Astrophytum), लोफोसिरुस (Lophocereus) इत्यादि। मोटा एवं चपटा तना वाला ओपेनसिया (Opuntia) पुष्प गुलाब जैसा होता है। सजावट के लिये मनोरम पत्तियों वाले पौधों में—अगेव (Agave), कोटिलिडन (Cotyledon), इक्मेरिया

(Echeveria), कैलान्चू (Kalanchoe), ग्रेपटोपेटालुम (Graptopetalum), एओनियम (Aeonium) इत्यादि प्रमुख है। फूलों की सुन्दरता के लिये ब्रायोफाइलम (Bryophyllum), एकाईनोसिरस (Echinocereus), अॅपरोकैक्टस (Aporocactus), अपरोफाईलुम (Aporophyllum), ऐडिनियुम (Adenium), पैकिपोडियम (Pachypodium), एरियोकार्पस (Ariocarpus,, नोटोकैक्टस (Notocactus), सेमीपरवीवम (Semipervivum), ऐपिफिलम (Epiphyllum) आदि लगभग सैकड़ों अधिक मांसल पौधों हैं, बहारदार एवं विचित्र पत्तियों के लिये फिलोडेनड्रॉन (Philodendron), नॉलिना (Nolina), एडिनियम (Adenium), ब्रोमिलिया (Bromelia), बिलबर्जिया (Billbergia), केलाडियम (Caladium), एलोकेसिया (Alocasia) आदि मांसल पौधों का चयन ज्यादा होता है। बरामदे में टांगने के लिये सीडम (Sedum), कैलिसिया (Callisia), जेब्रिना (Zebrina), ट्रडिसकेनसिया (Tradescantia) इत्यादि जातियों को लोग अधिक पसन्द करते हैं।

इन सब कुलों का प्रकृति से व्यवसायी वर्गों द्वारा ले जाने से, इनमें से कुछ जातियाँ लुप्त होती जा रहीं हैं जैसे—सिरोपिजीया (Ceropegia), होया (Hoya), फ्रेरिया (Frerea), कोमिलिना (Commelina). सिडम (Sedum) आदि। इन सब पौधों का संरक्षण एवं विस्तार करना आज जरूरी मुद्दा बन गया है।

कुछ कुछ मांसल पौधे मानव जाति के कल्याण के काम में आते हैं। ओपानसिया (Opuntia) को पीसकर गाँठों के दर्द एवं सूजन में लगाया जाता है। ओपानसिया इलेटर (Opuntia elator) के पुष्प एवं फल लोग खाते हैं। इसके फलों से बनी दवा धूधड़ तथा दमा में बहुत ही उपयोगी माना जाता है। कैलाडियम की कई प्रजातियों के पत्तों एवं कन्द से सब्जी बनाया जाता है। सिडम (Sedum), युफोर्बिया (Euphorbia), ब्रायोफाईलम (Bryophyllum), ऐकिवेरिया (Echeveria), कलान्चू (Kalanchoe), सेमपरविवम (Sempervivum) आदि औषधि द्रव्यगुणों से भरपूर है। अगेव (Agave) के विभिन्न प्रजातियों से रेशों को निकाला जाता है एवं ब्रोमिलियाड (Bromeliaceae) के गोत्रों से तो मशहूर फल का रसास्वादन भी गर्मी के दिनों में बहुत ही लोकप्रिय है।

इन जातियों के पौधों पर कीड़े-मकोड़ों का आक्रमण अधिक नहीं होता है। परन्तु कभी-कभी लाल मकोड़े एवं अन्य शोषक कीड़ों का आक्रमण देखा गया है जो थोड़ा-बहुत नुकसान कर देते हैं। आक्रमण से बचाने के लिये रोगर (Rogor) या मेटासिड (Metacid) जैसी दवाओं के घोल का छिड़काव प्रभावी होता है। दूसरे रोगों में ब्लैक-रॉट (Blackrot) एवं स्टेम रॉट (Stem rot) प्रमुख हैं एवं इसके लिये ताम्रघटित पदार्थों को गन्धक के साथ मिलाकर छिड़काव करने से काफी रोकथाम की जा सकती है।

✶

शैवाल : एक सामान्य परिचय

गिरिजा प्रसाद राय

शैवाल पर्णहरितयुक्त, संकेन्द्रीय, संवहन ऊतक रहित, थैलोफाइटस है। इसके थैलस में वास्तविक जड़ें, तथा पत्तियाँ आदि नहीं होतीं। इनमें सूक्ष्म एक कोशीय पौधों से लेकर विशालकाय बहुकोशीय पौधे पाये जाते हैं। इनमें जननांग प्रायः एककोशीय होते हैं। कुछ भूरे रंग के शैवाल में लिंगी प्रजनन के बाद भ्रूण नहीं बनता है। वनस्पति विज्ञान की शाखा जिसमें शैवाल का अध्ययन करते हैं, फाइकोलोजी कहलाती है।

शैवाल ताजे जल, गर्म जल के झरने, समुद्र, भींगी मिट्टी, पेड़ों के तनों या चट्टानों पर पाये जाते हैं। कुछ शैवाल जल के तल पर उपस्थित कीचड़ में रहते हैं जैसे चारा। कुछ झील व तालाबों के किनारे पाये जाते हैं। कुछ गर्म जल के झरनों में रहकर 70 से 80 सें० ग्रे० तापमान में अपना जीवनचक्र पूरा करते हैं। कुछ नीले हरे शैवाल 85 से० ग्रे० तापमान पर भी जीवित रहते हैं। कुछ शैवाल पानी पर तैरते रहतेहैं जैसे—डाइएटम्स तथा वाल्वाक्स। कुछ किनारे पर तैरते रहते हैं जैसे—स्पाइरोगायरा। कुछ शैवाल अधिपादप के रूप में दूसरे पौधों पर उगते हैं। प्रोटोडर्मा एक ऐसा शैवाल है जो कछुओं की पीठ पर उगता है। ऐसे भी कुछ शैवाल हैं जो जन्तुओं के शरीर के अन्दर पाये जाते हैं। कभी-कभी शैवाल परजीवी होते हैं जैसे—सीफेल्यूरोस जो चाय, काफी आदि की पत्तियों पर परजीवी होते हैं। कुछ शैवाल समुद्र में होते हैं जैसे सारगासम। बर्फ में पाये जाने वाले शैवालों के कारण बर्फ विभिन्न रंग का दिखाई पड़ने लगता है।

वायुमण्डल में नाइट्रोजन की मात्रा लगभग 79 प्रतिशत गैस की अवस्था में है। परन्तु यह अधिक पौधों के लिए उपयोगी नहीं होता है। इस प्रकार के बहुत कम पौधे हैं जो वायुमण्डल से मुक्त नाइट्रोजन को अवशोषित कर अपने अन्दर नाइट्रोजन युक्त पदार्थों का निर्माण करने में उपयोग कर सकते हैं। नील हरित शैवाल ऐसे पौधे हैं जो नाइट्रोजन यौगिकरण करते हैं और यह नाइट्रोजन दूसरे पौधों द्वारा प्रयोग की जा सकती हैं।

नील हरित शैवाल की उपयोगिताएँ :

1. नाइट्रोजन यौगिकरण : वायुमण्डल की नाइट्रोजन को पौधों के लेने योग्य बनाता है।

2. मृदा को पोरस तथा उपजाऊ बनाता है।

3. ऊसर तथा बंजर जमीन का सुधार : कुछ जातियाँ साइनोफाइसी ग्रुप की हैं जो ऊसर का प्रभाव कम करके नाइट्रोजन यौगिकरण कर उर्वरता बढ़ाते हैं।

4. खाद के रूप में भी शैवाल का प्रयोग होता है। इसका सबसे अधिक उपयोग धान की फसल में होता है।

5. क्लोरेला पानी के कार्बनडाइआक्साइड का प्रयोग कर आक्सीजन देता है जो विशेषकर मछलियों के लिए उपयोगी होता है।

6. गन्दे नाले के पानी में शैवाल उगकर एरोबिक बैक्टीरिया को आक्सीजन प्रदान करता है। ये जीवाणु सभी प्रकार की गन्दगी को जल्दी ही सड़ा देते हैं। जिससे वायु तथा जल दोनों ही शुद्ध होते हैं।

7. मछली तथा पानी में रहने वाले अन्य जन्तुओं के भोजन के काम आता है।

8. कुछ क्लोरेला के पौधे मनुष्य को नुकसान पहुँचाने वाले जीवाणुओं की वृद्धि रोकते हैं।

9. अन्तरिक्ष यात्रा में शैवाल का प्रयोग भोजन, आक्सीजन की प्राप्ति तथा कार्बनडाइआवसाइड के शोषण के लिए किया जाता है। ★

प्रकृति की अनमोल धरोहर

आर० सी० श्रीवास्तव

शिशु के जन्म लेने के बाद उसके पोषण की व्यवस्था ऐसा सुन्दर है प्रकृति का नियम। पृथ्वी पर जीव-जन्तुओं एवं मनुष्य के प्रादुर्भाव के पूर्व ही उसने उनके पोषणार्थ पूर्ण व्यवस्था कर दी। धरती पर जीवों की शनैः शनैः बढ़तो संख्या के साथ ही प्रकृति के इस खजाने में भी वृद्धि होती गई, जिसे हम विकास की संज्ञा देते हैं। इसके पूर्व क्या था ? न कहीं धरती थी, न कहीं पौधे थे और न ही कहीं कोई जीव जन्तु थे। कहते हैं कि करोड़ों वर्ष पहले एक दिन कोई बाहरी आकाश पिण्ड हमारे निकट आ गया जिससे सूर्य में एक बहुत बड़ी लहर उठी। इसी लहर की कुछ बून्दे उससे बहुत दूर न जा सकीं, और जहाँ तक पहुँच पाई, वहीं पर अपनी धुरी पर ही सूर्य के चारों तरफ घूमने लगीं। इन्हीं बूँदों में से एक हमारी पृथ्वी है तथा अन्य बून्दे हमारे नक्षत्र हैं।

परन्तु उस समय यह पृथ्वीं ऐसी थोड़ी ही थी। उस समय तो यह आग का दहकता गोला था। कालांतर में इस गोले की आग धीरे-धीरे बुझती गई और अन्त में उसकी बाह्य परत जम गई। परन्तु अन्दर अभीं भी इसकी धातुएँ दहकती रहती हैं, तथा कभी-कभो एक झटके से बाहरी परत तोड़कर बाहर निकलने की कोशिश करती है। पृथ्वी के अन्दर की आग का घना जहरीला धुआँ निकलता रहता था जो बाद में पृथ्वी के चारों ओर फैलकर घूमने लगा। इसी धुएँ के साथ आकाश में शून्य की कुछ गैसें भी मिल गई। बाद में यही सब मिलकर बादल के रूप में परिवर्तित होने लगी। इधर सूर्य की गर्मी का भी प्रभाव पड़ा। इन सबके के फलस्वरूप बादल घन-घोर वर्षा के रूप में पानी गिराने लगे, जिससे नदियाँ, सागर आदि बने। चट्टानें, बहते हुए एक दूसरे से रगड़ कर पिसती रही जिससे पत्थर, कंकड़, बालू आदि बनने लगे। इस प्रकार पृथ्वी का रूप बदलता रहा। फिर धीरे-धीरे वर्षा कम होती गई। धूप की गर्मी एवं वर्षा के संयुक्त प्रभाव से पत्थर और भी टूटे। जब वातावरण बन गया तो सृष्टिकर्ता ने इस वनस्पतियों की रचना की। पहले तो ये वनस्पतियाँ अत्यन्त सूक्ष्म रूप में उत्पन्न हुई परन्तु बाद में विकास की सीढ़ियाँ पार होते हुए विशाल-काय वृक्षों के रूप में आई। इन पौधों में यह शक्ति दी गई कि ये सूर्य की शक्ति को अपने 'हरित पदार्थ' (क्लोरोफिल) के माध्यम से भोज्य पदार्थ में परिवर्तित कर लें। पौधे की विभिन्न श्रेणियों के साथ ही विभिन्न श्रेणियों के जीवों का भी प्रादुर्भाव एवं विकास हुआ जिसके फलस्वरूप मानव जाति का भी इस धरती पर जन्म हुआ। इसके पूर्व ही सृष्टिकर्त्ता ने हमें अपने पोषण के लिए ऐसा स्रोत दे दिया था कि कभी भी समाप्त नहीं होगा बशर्ते हम इसको संरक्षित रखते हुए इसका उपयोग करें। यदि हम इस स्रोत को ही नष्ट कर दें तो स्पष्ट है कि हमारा भी विनाश होते देर नहीं लगेगी।

विकास की इस धारा में जो जीव अपने को परिस्थिति के अनुकूल नहीं बना पाये वे समाप्त हो गये। उदाहरणार्थ विशालकाय "डायनासोरो" का आज नामो-निशान भी नहीं है। इन्हीं के बाद स्तनपाई जीवों का विकाश हुआ था जिसका राजा आज मनुष्य है।

प्रारम्भ में मनुष्य भी प्रकृति के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलता था। परन्तु जैसे-जैसे मनुष्य आधुनिक सभ्यता की ओर अग्रसर हुआ उसको आवश्यकताएँ बढ़ती

गई। अविरल गति से बढ़ती जनसंख्या के फलस्वरूप हमारे पोषण के स्रोतों पर दबाव बढ़ता जा रहा है। परन्तु जन-साधारण इसे समझ ही नहीं पाता।

अनादि काल से भारतीय जन-जीवन में वनों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता रहा है। हमारे पूर्वज ऋषि-मुनि पर्यावरण एवं पौधों के महत्व को पूरी तरह समझते थे। भगवान बुद्ध ने कहा था :

"वन असीम दया और उपकार की वर्षा करने वाली विधाता की ऐसी अनोखी रचना है जो स्वयं पोषण के लिए किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं करता वरन अपने जीवन की कर्मण्यता के प्रतिफलों को खुले हाथों बिखेरता है।"

वन सभी जीवधारियों को आश्रय प्रदान करता है। यहाँ तक कि उस लकड़हारे को भी छाया देता है जो उसे काट देने को उद्यत होता है। वस्तुतः हीरे-जवाहरात रूपी धन से वनस्पति सम्पदा कहीं अधिक मूल्यवान होती है। वृक्ष समृद्धि की राह रेखित करते हैं। हाल में ही पौधों के वैज्ञानिक मूल्यांकन फलस्वरूप ज्ञात हुआ है कि वृक्ष अपने काल में लगभग 1,70,000 रु० की बचत करते हैं। वे हमें प्राण वायु से लेकर फल-फूल एवं सूखने पर जलाऊ लकड़ी तक प्रदान करते हैं।

इस ब्रह्माण्ड में यह धरती ही मात्र ऐसी है जहाँ हमारा जीवन संभव है। और इस धरती पर मनुष्य ही नहीं वरन प्रत्येक जीव का जीवन पूर्णतया पौधों पर आश्रित है। पौधों के अतिरिक्त किसी भी अन्य जीव में यह क्षमता नहीं होती है कि वह पृथ्वी से जीवनोपयोगी आवश्यक तत्वों को खींच सके। यह कार्य मात्र पौधों की जड़ों से ही सम्भव है। सूर्य की जीवन-दायिनी ऊर्जा को भोजनोपयोगी बनाने की क्षमता भी मात्र पौधों में ही है।

यूँ तो प्रकृति समदर्शी है फिर भी हमारे देश को प्रकृति का विशेष अनुग्रह प्राप्त है। ऋषि मुनियों का यह देश सम्भवतः इस वसुन्धरा पर अनोखा देश है जहाँ तीनों ऋतुओं का संगम होता है। कहीं पर तपती लू चलती है तो उसी समय कहीं बर्फ पड़ रही होती है। जलवायु की इसी विषमता ने इस देश को अतुलनीय वनसंपदा से धनी बनाया है। एक आँकड़े के अनुसार हमारे देश में लगभग 45,000 प्रजातियों के विभिन्न श्रेणी के पौधे पाये जाते हैं; जिनमें 600 टेरिडोफाइट्स, 2,700 ब्रायोफाइट्स, 5,000 शैवाक, 20,000 फफूंद 1,600 शैवाल तथा 15,000 के करीब फूल वाले पौधों की प्रजातियाँ पायी जाती हैं। इनमें से लगभग 5,000 प्रजातियाँ ऐसे फूल वाले पौधों की है जो मात्र हमारे देश की अमानत है, अभी तक सम्पूर्ण विश्व में अन्यत्र कहीं भी प्राप्य नहीं है। इन प्रजातियों को "स्थानिक" की संज्ञा प्रदान की गई है।

परन्तु हमारी निरन्तर बढ़ती हुई आकांक्षाओं एवं अधिकाधिक सुख-सुविधा की लालसा के वशीभूत होकर हमने (मानव जाति ने) प्रकृति की इस अनमोल धरोहर का दुरुपयोग करना प्रारम्भ कर दिया। वनों की अनियमित कटाई, बाँध-निर्माण, खदानों का विस्तार, चरागाहों के असीमित उपयोग आदि मानव जनित कारणों के फल-स्वरूप प्राकृतिक स्रोतों का अत्यन्त तीव्र गति से अतिदोहन या विनाश हुआ है। पौधों की अनेक प्रजातियाँ तो हमारी जानकारी में आने से पूर्व ही विलुप्त हो गई। मात्र हमारे देश में ही लगभग 2,000 वनस्पतियाँ समाप्तोन्मुख है और अनेक तो लुप्त भी हो चुकी है। हमारे देश के कुछ अंचलों में अभी भी ऐसे वन है जहाँ उनका प्राकृतिक विकास निर्विघ्न चलता आ रहा है।

प्रख्यात संरक्षणवादी वैज्ञानिक डा० नारमन मायर के अनुसार आज मात्र उष्ण कटिबंधीय वनों से ही लगभग प्रतिदिन एक पादप-प्रजाति का लोप हो रहा है। डा० पीटर रावेन ने यहाँ तक खोज निकाला है कि प्रत्येक लुप्त

होती पादप-प्रजाति के साथ 10-30 तक अन्य आश्रित जीवों की प्रजातियाँ भी लुप्त हो जाती हैं।

प्रकृति की बहुमूल्य सम्पदा की इन ईकाइयों का इस प्रकार लुप्त होना एक गम्भीर समस्या है, और भविष्य में इसके भयंकर परिणाम अवश्यम्भावी है। इनसे इस धरती के प्राकृतिक स्रोतों में कमी तथा उससे उत्पन्न होने वाला पर्यावरणीय असंतुलन तो होता ही है, साथ ही पौधों में प्राप्य आनुवंशिक विभिन्नता भी संकुचित होती चली जाती है, जो कि हमारी फसलों की नई-नई अधिक-उपजाऊ एवं सहनशील किस्मों का आधार होती है। इससे एक दिन आ सकता है जबकि हमारे पास किसी भी फसल की नई किस्म विकसित करने के लिए हमें उसके समकक्ष प्राकृतिक स्रोत ही नहीं प्राप्त हो पायेगा।

आज हमें इस समस्या पर प्राथमिकता के तौर पर ध्यान देने की आवश्यकता है। सर्वप्रथम हमें समाप्तोन्मुख प्रजातियों को जहाँ तक सम्भव हो उनके अपने ही वातावरण में सुरक्षित करना होगा। हाँ यदि उसका प्राप्तिस्थान नष्ट हो चुका हो या अब इनके अनुरूप न रह गया हो तो हम उन्हें उद्यानों, राष्ट्रीय पार्कों या अन्य सुरक्षित क्षेत्रों में संरक्षण दे सकते हैं। इसी के साथ आवश्यकता इस बात की है कि हम मरुस्थलीय उष्ण कटिबन्धीय तथा समुद्री-द्वीपों के परिस्थित तन्त्र (इकोसिस्टम) को प्राथमिकता के तौर पर अध्ययन करे तथा संरक्षण-पार्कों की स्थापना करके उपरोही वनस्पतियों आदि तथा अन्य समाप्तोन्मुख वनस्पतियों की रक्षा करने का प्रयास करें।

इस कार्य के लिए हमें जन साधारण में पर्यावरण चेतना जागृत करनी होगी जिससे हमारे देश के सुदूर कोने में बसा आदमी भी इस वास्तविकता को समझ सके और स्वीकार कर सके कि वह भी इस धरती पर उतना ही महत्व रखता है जितना कि एक पर्यावरण विज्ञानी या अन्य कोई भी महत्वपूर्ण व्यक्ति। इस पृथ्वी पर हमारे सहचर जीव-जन्तु, पेड़-पौधे कीड़े-मकोड़े भी समान रूप से इस पृथ्वी पर अधिकार रखते हैं। उनमें से किसी का भी ह्रास पर्यावरण के लिए एक गम्भीर स्थिति का संकेत है। अतः हम सभी का यह सबसे बड़ा कर्तव्य है कि हम सभी इस पर्यावरण को जीव मात्र के जीवन के योग्य बनाएँ।

पर्यावरण एक सम्पूर्णता है तथा इसमें प्रत्येक जीव-जन्तु का समान स्थान व उपयोगिता है। हमारे ही जीवन के लिए यह आवश्यक है कि हम परिस्थिति तन्त्र में सन्तुलन को बाधा पहुँचाए बिना ही प्रकृति के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चले। यदि हम इस सत्य को समझ सके तभी हम इस प्रकृति की इस अमूल्य धरोहर की रक्षा कर सकेंगे।

वर्तमान पीढ़ी की जिम्मेदारियाँ कुछ अधिक ही है क्योंकि हमें भूतकाल में हुई गलतियों को सुधारना है, अपना वर्तमान सुरक्षित व सुखमय रखना है तथा साथ ही भविष्य में आने वाली पीढ़ी के सुखमय जीवन के लिए सुन्दर पर्यावरण का आधार संजोना है।

★

चूका-सिक्किम का एक खूबसूरत शाकीय पौधा

सर्वेश कुमार

सिक्किम की पहाड़ियों में 4000 से 4500 मीटर की ऊँचाई पर पाया जाने वाला यह पौधा अपनी सुन्दरता से बरबस ही आगन्तुक का मन मोह लेता है। यहाँ की साधारण बोलचाल की भाषा में इसे 'चूका' तथा अंग्रेजीमें 'सिक्किम केबेज' या 'जिजेन्टिक रुबार्ब' कहते हैं। अपने पादप सर्वेक्षण अभियान के दौरान सर जोजफ डाल्टन हुकर ने इस पौधे को बेहद पसन्द किया व इसे "सिक्किम के सबसे खूबसूरत शाकीय पौधे" का खिताब दिया। वास्तव में यह अपने आकार व पत्रों की सज्जा व रंग रूप से देखने वाले पर एक अमिट छाप छोड़ता ही है। पहाड़ों के शान्त व एकरस वातावरण में दूर से ही जब इस पौधे की कतारें खड़े हुए मनुष्य का सा आभास देती हैं तो वह थकान भरी एकरसता हर्ष व विस्मय से दूर होती जाती है व ज्यों-ज्यों इसकी ओर बढ़ते जाते हैं इसके आकर्षक पीतवर्णी पत्र जिन पर हल्की बैंगनी रंग की धारियाँ होती हैं एक विशिष्ट सज्जा के कारण अत्यन्त सुन्दर दृश्य उपस्थित करते हैं। इसके बारे में एक रोचक किस्सा भी मशहूर है। कहते हैं यहाँ के सैनिक अभियान दल ने जब तिब्बती सीमा की ओर प्रस्थान किया तो एक कुहासे भरी सुबह में घाटी में उग रहे चूका पौधों को सैनिकों ने धोखे से तिब्बती सेना की एक टुकड़ी समझ लिया।

वनस्पतिज्ञों की भाषा में इसे रहीअम नोबाइल कहते हैं। इसके नामकरण का श्रेय भी प्रसिद्ध वनस्पतिज्ञ सर हुकर एवं थॉमसन को ही जाता है। यह पौधा चोला व शिंगालीला पर्वत श्रृङ्खलाओं में 4000-4500 मीटर ऊँचाई पर काफी संख्या में उगता हुआ मिलता है। लाचुँग से ऊपर कटाओ क्षेत्र में, युमथाँग से मौमेंसाम्डाँग के रास्ते में तथा कंचनजंघा की पहाड़ियों में इसे आसानी से इसी ऊँचाई पर देखा जा सकता है।

काली पथरीली खुली चट्टानों पर एक पीले रंग के पिरेमिड के स्तम्भ जैसा यह आकर्षक पौधा अपने चौड़े पुष्प पत्रों (ब्रेक्ट्स) से फूलों को ढके रहता है। ये पुष्प पत्र टाइलों की तरह एक दूसरे के ऊपर लगे रहते हैं। पुष्पपत्र एक रक्षा कवच की तरह तेज वर्षा, हवा व आँधी से फूलों की रक्षा करते हैं। ये फूल जुलाई से सितम्बर तक रहते हैं। पौधे के आधार पर चौड़े हरे पत्तों का एक घेरा जमीन पर फैला रहता है। पुष्प पत्रों का पीला रंग व जमीन पर फैले ये हरे पत्ते एक आकर्षक विरोधाभास प्रस्तुत करते हैं। पौधे का तना खोखला व शुद्ध जल भरा हुआ होता है। इसे यों ही कच्चा अथवा उबालकर खाया जाता है। जड़ें 1 से डेढ़ मीटर तक लम्बी तथा 5 से० मी० तक मोटी होती हैं। सूखी पत्तियाँ तम्बाकू के स्थान पर धूम्रपान के उपयोग में लाई जाती हैं। इसके मांसल पुष्प पत्र उबाल कर सब्जी की तरह खाने के काम में लाये जाते हैं। भोजन के अभाव में अथवा मौसम की विषम परिस्थितियों में स्थानीय निवासी इसका भरपूर उपयोग करते हैं परिणाम स्वरूप सैनिकों के आवास स्थलों व बस्तियों के क्षेत्रों में इनकी संख्या में काफी कमी आई है। अभी स्थिति अधिक चिन्ताजनक नहीं है किन्तु यदि इसका दोहन इसी गति से जारी रहा तो हम एक खूबसूरत वनस्पति को सदा सर्वदा के लिए खो देंगे।

★

विभूषक वेणु

हरी शंकर पाण्डेय, रथीन कुमार चक्रवर्ती एवं अरुप बनर्जी

बांस घास समूह के वे पौधे हैं जो साधारणतया लम्बे-सीधे कुञ्जवत, कभी-कभी आरोही तथा विरले शाक पौधों के रूप में पाये जाते हैं। इसे संस्कृत में वेणु कहा गया है। इस समूह के पौधों का मानव जाति से सम्बन्ध मनुष्य सभ्यता के प्रारम्भ से ही है। यह विशेषकर ग्रामीणों की आधारभूत आवश्यकताओं जैसे भोजन, कपड़ा एवं मकान की सामग्री प्रदान करता है। इसके अलावा ये लघु तथा वृहद् शिल्प उद्योगों के लिए कच्चे माल भी प्रदान करते हैं। इस प्रकार बाँसों की बहुलता वाले क्षेत्रों के ग्रामीण समुदाय की आर्थिक एवं सामाजिक उत्थान में बांसों ने बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

बाँस तेजी से बढ़ने तथा अत्यधिक उपज देने वाला प्राकृतिक पौध सम्पदा है। इसे बार-बार नवीन किया जा सकता है अर्थात् बार-बार उपज ली जा सकती है। ये नम उष्ण कटिबन्धीय, उपोष्ण तथा हल्के शीत प्रदेशों में पाये जाते हैं। विश्व के विभिन्न भागों में बाँसों के 60 वंश (जेनेरा) तथा लगभग 1500 जातियाँ है। दक्षिणी-पूर्वी एशिया में बाँसों की बहुमूल्य प्राकृतिक एकत्रीकरण हैं एवं सिर्फ भारत में करीब 136 जातियाँ पायी जाती हैं।

नयनगोचर प्रदेश (लैन्डस्केप) तथा शोभाकर बागवानी के लिए ताड़ (पाम) जातीय पौधों की तरह बाँस भी आवश्यक अंग है। इस दिशा में व्यवहार किये जाने वाले बाँसों की जातियों का चयन निम्न गुणों जैसे : आसान सम्बर्द्धन, प्राकृतिक सौन्दर्य मूल्य, परिमाण (लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई) मुख्यत: छोटा परन्तु कभी-कभी विशाल, चित्ताकर्षक तथा लोकप्रिय रूप के आधार पर किया जाना चाहिए। इस दायरे में चुनाव संकुचित होने के कारण इन जातियों की संख्या भी सीमित हो जाती है। के० एन० बहादुर एवं पी० सी० गुप्ता (1983) के अनुसार ऐसी जातियों/प्रभेदों की संख्या करीब तीन दर्जन है ["वन चेतना" मैगजीन आफ स्टेट फारेस्ट सर्विस कालेज, देहरादून, 1983, पृ० 73-77]

इस लेख में ऐसे ही देशी या विदेशी जातियों, प्रभेदों एवं प्ररूपों का विवरण दिया गया है जिनका सम्बर्द्धन भारत में बहुत दिनों से हो रहा है अत: पौधे आसानी से प्राप्त किये जा सकते हैं। सम्वर्द्धन करने वालों की जानकारी एवं सुविधा के लिए इन सब जातियों का जन्म-स्थान वितरण, विभिन्न भाषाओं में नाम , भारतीय वनस्पति उद्यान में प्रवेशन का इतिहास, परिमाण, रंग, पहचान योग्य गुण, प्रसारण, लगाने का उचित स्थान, देखभाल, उपयोगिता आदि का संक्षिप्त विवरणों के साथ-साथ वनस्पति विज्ञान में प्रयोग किये जाने वाले नामों के आधार पर क्रम-बद्ध किया गया है।

बाम्बूसा आट्रा (Bambusa atra)

यह बाँस की एक ऐसी जाति है जिसमें पुष्पन लगातार होता है। वैसे तो आम मान्यता है कि बांसों में पुष्पन कभी-कभी होता है एवं पुष्पन के पश्चात् बांस-पुँजों या कोठियों की मृत्यु अवश्यम्भावी होती है, परन्तु यह धारणा इस जाति के लिए अपवाद है। फूल आने के पश्चात् भी इस जाति के बांस-पुँज नहीं मरते बल्कि स्वस्थ एवं हरे रहते हैं, और इनका जीवन भी सुचारु रूप से चलता रहता है। स्वजात रूप में ये अण्डमान द्वीप के सागर तटीय दलदली वन (रथलैण्ड द्वीप) तथा मलाया में पाये जाते हैं। भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा में इसका

प्रवेशन उद्यान के अध्यक्ष सर डेविड प्रेन द्वारा दिसम्बर 1890 में रथलैण्ड द्वीप से लाकर किया गया था। वनस्पति विज्ञान में उपरोक्त नाम के बांस को पहले बाम्बूसा लाइनिएटा (Bambusa Lineata) के नाम से जाना जाता था। यह जाति छोटे परिमाण की होती है जिसके कान्डों (कलम) का रंग हल्का पीला, लम्बाई लगभग 2 मीटर तथा मोटाई 2-3 से० मी० होती है। पोर (इन्टरनोड) की लम्बाई 45-60 से० मी० होती है। तुलनात्मक दृष्टि से पोरों एवं पत्तियों का आकार बांस-पुञ्जों के अनुपात में बडा होता है। उद्यान को सुशोभित करने के लिए बड़े पोर एवं पत्तियों वाले इस देशज जाति के बांस-पुञ्ज उपयोगी होते हैं। तालाबों के किनारे झाड़ी के रूप में या सोमेंट के बने हौजों के पास लगाये जा सकते हैं। सदैव पुष्पित एवं हरे-भरे ये बांस-पुञ्ज सुन्दर और आकर्षक लगते हैं।

नियमित पुष्पन चक्र के कारण इनमें वर्ष के किसी भी माह में पुष्प देखा जा सकता है। बीजों द्वारा इसका प्रसारण सम्भव नहीं क्योंकि द० पश्चिम बंगाल के जलवायु में या तो बीज बनते ही नहीं अथवा अपुष्ट रहते हैं। इसका विस्तार पुराने कुञ्जों को विभक्त करके एवं अलग-अलग लगाकर किया जा सकता है। अन्य जातियों की तुलना में इसकी देखभाल की आवश्यकता कम होती है परन्तु बांस-पुञ्जों को सुन्दरता बनाये रखने के लिए सूखे पुष्प विन्यास एवं कान्डों को अलग करना तथा नमी बनाये रखना जरूरी होता है।

बाम्बूसा मल्टिप्लेक्स (Bambusa multiplex)

चीन एवं जापान के मूल स्थान वाले 'चाइनीज बाम्बू' के नाम से प्रचलित इस बांस को पहले वनस्पति शास्त्र में बाम्बूसा नाना के नाम से जाना जाता था। व्हाइट (1945) ने अपनी पुस्तक "हारट्स सबअरबन्स काल-कटेन्सीस" में उल्लेख किया है कि इसका प्रवेशन भारतीय वनस्पति उद्यान में चीन से लाकर सन् 1794 में किया गया था।

यह एक झाड़ीदार बांस है। इसके कान्ड मोटे गाँठ वाले, चिकने, 2-3.5 मी० तथा 1.5-2.5 से० मी० मोटे होते हैं जिनपर शाखायें निचले सतह से ही आना शुरू हो जाती है। कान्ड-खोल (कलम-सीथ) पहले हरे एवं परिपक्व होने पर पीले, 10 – 12 × 5 – 6 से० मी० आकार वाले होते हैं जिसका ऊपरी भाग गोलाकार होता है। कान्ड-खोल का फल (ब्लेड) 5-6 से० मी० लम्बा नुकीला तथा नीचे भाग पर प्रायः गोलाकार होता है।

यद्यपि इसका जन्मस्थान चोन-जापान है परन्तु सुन्दर होने के कारण सम्वर्द्धन उष्ण तथा उपोष्ण कटिबन्धीय उद्यानों में बहुतायत से किया जाता है। भारत के विभिन्न प्रदेशों विशेषकर आसाम एवं अन्य स्थानों के चाय बगानों में बाड़ के रूप में लगाया जाता है। इससे बने बाड़ सुन्दर एवं मजबूत होते हैं जिसकी सराहना विलियम राक्सवर्ग, तत्कालीन अध्यक्ष, भारतीय वस्पति उद्यान, हावड़ा ने भी की है। इस लोकप्रिय जाति के बांस-पुञ्जों को तालाब के निकट से गुजरने वाली सड़कों के किनारे पर या तालाबों के मेड़ पर लम्बाई या वृत में बाड़ या कुञ्ज के रूप में लगाना मनोहर होता है।

इसका प्रसारण कठिन नहीं होता। कान्डों को विभक्त करके अलग-अलग लगाने से नये पौधे तैयार हो जाते हैं। कान्डों को विभक्त करते समय ध्यान रखना चाहिए कि पुराने कान्ड के साथ एक कोपल रहे। ऐसा करने से नये तैयार होने वाले पौधों की संख्या बढ़ जाती है। वैसे इस जाति पर किसी व्याधि या कीड़े-मकोड़ों के आक्रमण का अवलोकन नहीं किया गया फिर भी बाँस-पुञ्जों को सुन्दर एवं स्वस्थ बनाये रखने के लिए देखभाल

करना जरूरी होता है क्योंकि आकार छोटा होने के कारण जंगली लतायें चढ़ जाती है जो बांस-पुञ्जों के बाढ़ व लालित्व में बाधा पहुँचाती है। बांस-पुञ्जों या कोठियों का आकार ठीक रखने के लिए सूखी एवं झुकी हुई शाखाओं या कान्डों के साथ अनावश्यक जड़ों को भी अलग करते रहना चाहिए।

बाम्बूसा मल्टिप्लेक्स प्ररूप वेराइगाटा (Bambusa multiplex var variegata)

पत्तियों की बिभिन्नता को छोड़कर यह प्ररुप सभी प्रकार के उपरोक्त जाति की तरह ही होता है। इसकी पत्तियों पर सफेद रंग की धारियां होती है जिसके आधार पर यह उपरोक्त जाति से अलग की जा सकती है। वन शोध संस्थान देहरादून से प्राप्त इस सुन्दर प्ररुप का प्रवेशन भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा में अक्टूबर 1983 में एच० एस० पाण्डेय तथा के० सी० सरदार द्वारा हुआ था।

शोभाकर बागवानी की दृष्टि से ये दोनों ही भेद उद्यान के लिए आवश्यक है परन्तु पत्तियों में रंग विरङ्गापन अर्थात् सफेद धारियों की उपस्थिति के कारण इसे अधिक पसन्द किया जाता है। धूपवाले खुले स्थान पर लगाये गये इस प्ररूप के बास-पुञ्ज का लालित्व बढ़ जाता है क्योंकि धूप के कारण हरी पत्तियों पर सफेद धारियां अधिक स्पष्ट हो जाती है। इस प्ररूप का प्रसारण, उपयोग, देखभाल इत्यादि उसी प्रकार करना चाहिए जैसे जाति बाम्बूसा मल्टिप्लेक्स।

बाम्बूसा मल्टिप्लेक्स रीवीइरेओरम (Bambusa multiplex var. riviereorm)

छोटे आकार वाले इस सुशोभित बांस का जन्म स्थान चीन है जो 'चाइनीज गार्डेस' के नाम से जाना जाता है एवं दक्षिणी चीन में बाड़ के रूप में उगाया जाता है। भारत में इसके प्रवेशन के बारे में कोई संदर्भ नहीं मिलता परन्तु भारतीय उद्यान में नेपाल निवासी श्री कृष्ण प्रसाद सुदेदी द्वारा उपहार स्वरूप फरवरी 1986 में प्राप्त हुआ, जिसे वे दार्जीलिंग से लाये थे। भारत के पहाड़ी स्थानों जैसे कालिमपांग, कर्सियांग, दार्जीलिंग आदि में इसका सम्वर्धन गमले या जमीन में विभूषक बांसों के रूप में किया जाता है।

इन प्रभेद के बांस-पुन्ज लचीले कान्डों से भरे होते हैं जिनकी मोटाई करीब 5-6 मि० मी० एवं ऊँचाई उम्र के साथ 2-3 मी० हो जाती है। ये कान्ड सदैव ठोस तथा गहरे हरे रंग के होते हैं। कान्डों के प्रत्येक गाँठ पर दो के क्रम में (एक छोटी तथा दूसरी बड़ी) दुर्बल टहनियाँ निकलती हैं जो सिरे के तरफ नीचे की ओर मुड़ी हुई होती है। इन टहनियों पर ललित पर्णाङ्ग सदृश्य छोटी पत्तियाँ होती है जिनकी लम्बाई 4-7 से० मी० होती है। इन पत्तियों के उर्धतलीय या पृष्ठीय भाग चाँदी सदृश अति श्वेत होते हैं।

छोटे परिमाण, घने बांस-पुन्ज, झुके कान्ड तथा कान्डों के दुर्बल टहनियों पर पर्णाङ्ग सदृश्य छोटी पत्तियों सहित यह प्रभेद अत्यन्त मनभावन लगती है। कंकड़ीला, छायादार एवं नम स्थान पर इसे लगाना चाहिए जहाँ जलोत्सारण की व्यवस्था हो। इस प्रभेद के पौधे बाड़ या कुन्ज के रूप में लगाने के लिए उपयुक्त होते हैं। शोभाकार पौधों की तरह गमलों में उगाकर भीतरी सजावट के काम में भी लाया जा सकता है। इसका प्रसारण भी आसान है। बांस-पुञ्जों में प्रचुर कान्ड होते हैं जिन्हें विभक्त करके मिट्टी, बालू, गोबर एवं पत्ती की खाद (2 : 1 : 1 : 1) के मिश्रण को गमले में भरकर लगाने के बाद छायादार एवं नम स्थान पर रखने से अच्छा परिणाम मिलता है। इस प्रभेद को विशेष रख-रखाव की आवश्यकता नहीं होती फिर भी बांस-पुञ्जों का लालित्व

बनाये रखने के लिए निकाई, गोड़ाई एवं नमी की व्यवस्था बनाये रखना जरूरी होता है। इसके आलावा कोठियों के सूखे काण्ड एवं टहनियों को अलग निकाल देना आवश्यक होता है।

बाम्बूसा वेन्ट्रीकोसा (Bambusa ventricosa)

शोभाकर बागबानी के किए यह जाति बहुत ही लोकप्रिय एवं उचित समझी जाती है। इसे अंग्रेजी में 'बुद्धाज वेली बाम्बू' या 'पीचर बाम्बु' एवं बंगला में 'छोटी-बांस' के नाम से पहचाना जाता है। इसका मूल स्थान चीन एवं जापान है परन्तु सम्वर्धन उष्ण कटिबन्धीय तथा उपोष्ण उद्यानों में भी सम्भव हुआ है। भारतीय वनस्पति उद्यान में इसके प्रवेशन के बारे में उचित प्रमाण प्राप्त नहीं है परन्तु सर्व प्रथम ए० टी० गेजने सन् 1913 में इसकी उपस्थिति का रिपोर्ट किया। भारत के विभिन्न प्रान्तों जैसे प० बंगाल, उत्तर प्रदेश, बिहार, कर्नाटक, तमिलनाडु इत्यादि के उद्यानों में इसका सम्बर्धन देखा गया है।

यह जाति तुलनात्मक दृष्टि से छोटे परिमाण वाली होती है। कान्ड मात्र 4-6 मी० लम्बे होने हैं। हरे रंग के छोटे छोटे कलश या घट के रूप में फूले हुए पोरों (इन्टरनोड) की उपस्थिति के कारण यह जाति आसानी से पहचानी जा सकती है। बांस-पुञ्ज घने होते हैं एवं ऊपर फैले हुए सुहावने छाता का आकार बनाते हैं। उद्यान में सड़कों के दोनों तरफ 3-3 मी० की दूरी पर लगाये गये बांस-पुञ्ज मनोरम लगते हैं। बड़े भवनों या इमारतों के फाटक पर लगाये गये कुन्ज भी सुन्दर लगते हैं जिन्हें सजावट के कामों में लाया जा सकता है।

इसका प्रसारण आसान होता है। गाँठों के पास जहाँ से शाखायें निकलती है वहाँ कान्डों के पुराने होने पर अनेक प्राकृतिक जड़ें उत्पन्न होती है। बरसात में जड़ों सहित इन शाखाओं को बालू या मिट्टी में लगाने के 2-3 महीने बाद लगाने लायक पौधे तैयार हो जाते हैं। इस जाति के बांस-पुन्जों का देख-भाल आवश्यक होता है। इनको ठीक रखने के लिए पुराने सूखे बांसों एवं डालियों को अलग करते रहना चाहिए अन्यथा सुन्दरता पर आघात पहुँचता है। कभी-कभी इसके कोठियों या बांस-पुञ्जों में ऊँचे एवं लम्बे पोर वाले कान्ड वा बांस निकलते हैं, जो देखने में ठीक बाम्बूसा वलगेरिस के तरह लगते हैं, उन्हें भी सुन्दरता बनाये रखने के लिए निकाल देना चाहिए। इसके अलावा बांस-पुञ्जों की निकाइ-गोड़ाई एवं सिंचाई बीच-बीच में करते रहना चाहिए।

बाम्बूसा स्ट्रीएटा (Bambusa striata)

सबसे लोकप्रिय एवं आकर्षक यह जाति अंग्रेजी में 'येलो या गोल्डेन बाम्बु', बंगला में 'हल्दो बांस' तथा हिन्दी में 'पीला बांस' के नाम से प्रचलित है। उद्गम स्थान चीन व जापान होते हुए भी विश्व के विभिन्न भागों में शोभा के लिए उगाया जाता है। भारतीय वनस्पति उद्यान में इसके प्रवेशन का स्पष्ट विवरण ज्ञात नहीं हो सका है परन्तु प्रकाशित लेखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सन् 1874 के पहले हुआ। उपरोक्त नाम के पहले वनस्पति शास्त्र में इसे बाम्बूसा वलगेरिस प्रभेद स्ट्रीएटा या वीटाटा या आरिओ-वेरीगाटा के नाम से जाना जाता था। फेंदरी बाम्बु (बाम्बूसा वलगेरिस) की तुलना में इस जाति का आकार एवं पत्तियाँ दोनों ही छोटे होते हैं। इसके सुनहले पीले रंग वाले प्रत्येक कान्ड पर हरे रंग की धारियाँ होती है। परन्तु धारियों की संख्या निश्चित नहीं होती। ये गुण इस जाति को पहचानने में सहायक होते हैं। विस्तीर्ण भूमि में लगाये गये बांस-पुञ्ज चित्ताकर्षक विषय बन जाते हैं। तालाबों या जलश्रोतों के

किनारे अथवा पूरे वर्ष नम रहने वाले स्थानों पर लगाये गये बांस-पुञ्ज सफलता से उगते हैं और सुन्दर भी दिखते हैं।

इस जाति का प्रसारण आसान है एवं कान्ड तथा शाखा कृतन (फटिंग) द्वारा किया जा सकता है। इस पद्धति द्वारा प्रसारण सम्बन्धी अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि एक या दो वर्ष पुराने कान्डों से लिए गये कृतन की अपेक्षा छः मास पुराने विना फाड़े हुए स्तम्भिक रोपड़ अधिक उपयुक्त होता है। पुराने गाँठों के पास जहाँ से शाखायें निकलती है, वहाँ बाद में अनेकों छोटी-छोटी प्राकृतिक जड़ें भी उत्पन्न होती है। जड़ों सहित इन शाखाओं को अलग करके वर्षा के दिनों में बालू या मिट्टी में लगाने से नये पौधे तैयार हो जाते हैं। इसके अलावा यह भी देखा गया है कि कम उम्र वाले शाखा रहित कान्डों को तालाब में डाल देने के करीब एक महीने बाद गाँठों पर नयी शाखायें तथा जड़ें आ जाती है। जड़ सहित इन शाखाओं को अलग करके मिट्टी या बालू में लगाने के करीब तीन महीने बाद लगाने योग्य पौधे तैयार हो जाते हैं। भारतीय वनस्पति उद्यान में इस जाति के अनेकों बांस-पुन्ज है जिनमें से एक-2 बांस-पुन्ज में जनवरी 1986 तथा जनवरी 1991 में पुष्पन देखा गया परन्तु बीज न बनने के कारण बीजों द्वारा प्रसारण सम्भव नहीं हो सका। अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पुष्पन के पश्चात भी इस जाति के बांस-पुन्ज नहीं मरते बल्कि 2-3 वर्ष तक जीवित रहते हैं।

यह जाति लोकप्रिय एवं चित्ताकर्षक तो है परन्तु कमजोर किस्म के होने के कारण इसके कान्ड हवा के झोंकों से या तो टूट जाते हैं या स्थायी रूप से झुक जाते हैं। इसके उग रहे नये कोमल कान्डों पर दिसम्बर-जनवरी महीने में एफिड का आक्रमण भी देखा जाता है। इसलिए इस सुकुमार जाति के रख-रखाव में सावधानी आवश्यक होता है। बांस-पुञ्जों को हमेशा साफ रखते हुए झुके एवं टूटे वांसों को अलग कर देना चाहिए एवं नये कोपड़ों के बचाव के लिए एफिड मारने वाली दवा का बीच-बीच में छिड़काव करना चाहिए। इसके बांस-पुञ्ज भी फैले हुए आकृति के होते हैं जिसे आँधी या तूफान से बचाने के लिए साल में एक बार मिट्टी चढ़ाना उचित होता है।

सिफैलोस्टैचियम परग्रेसाइल (Cephalostachyum pergracile)

शोभाकर बागवानी के लिए यह अति उत्तम जाति भारत (बिहार, आसाम, नागा पहाड़ी, मध्यप्रदेश, उड़ीसा एवं आन्ध्रप्रदेश) तथा बर्मा में स्वजात रूप में पायी जाती है। यह मणिपुरी में 'ओटागं', नागा में 'लाटागं', उड़िया में डागीं तथा मध्यप्रदेश में भालन बांस के नाम से जानी जाती है। भारतीय वनस्पति उद्यान में प्रवेशन के लिए सन् 1863 में एस० कुर्ज ने बर्मा से भेजा था। चीन वाले भी इसे विभूषक बांसों की सूची में रखते हैं।

गुच्छों के रूप में उगने वाली बांसों की यह जाति वृक्ष-सदृश्य होती है जिसके कान्ड 8-10 मी० लम्बे तथा 4-6 से० मी० मोटे होते हैं। आमतौर पर कान्डों पर शाखायें 3-4 मी० के ऊँचाई के बाद ही आना शुरु होती है। ये कान्ड पतली दीवार वाले होते हैं जिसकी मोटाई 1,2 से० मी० होती है। कान्ड या तनाखोली (कलमसीथ) का आकार 12-15 x 15-18 से० मी०, रंग अखरोट की तरह भूरा होता है। यह खोली पोर (इन्टरनोड) से बहुत छोटी होती है जिसका उपरी भाग काले वालों से सघन रूप मे ढका होता है। फल (ब्लेड) छोटा एवं प्याले के आकार का होता है तथा कर्ण-शष्कुली (आरिकुल) के ऊपर लम्बे बाल होते हैं।

गुच्छों के रूप उगने वाले सघन बांस-पुञ्ज जिनके कान्डों पर भूरे रंग की खोली चिपकी होती है देखने में सुन्दर एवं आनन्दायक लगते हैं। किसी भी स्थान पर लगे बांस-पुञ्ज नयनगोचर प्रदेश की शोभा बढ़ा देते हैं। हावड़ा के भारतीय वनस्पति उद्यान में लगे इस जाति के बांस-पुञ्ज में पतझड़ मार्च-अप्रैल में होता है। पतझड़ की दशा में भी ये बांस-पुञ्ज अपनी सुन्दरता बनाये रहते हुए ऐसे लगते हैं जैसे पुष्पन होने वाला है। प्रसारण के लिए पुराने कान्डों को नये कोपलों के साथ अलग करके लगाना उचित होता है। परन्तु इस प्रकार लगाये गये पौधों के भी बचने का प्रतिशत कम होता है। इस जाति के पौधों की देख-रेख में नमी का ध्यान रखना जरूरी होता है।

डेन्ड्रोकेलामुस जिजेन्टियस (Dendrocalamus giganteus)

इस वृहदाकार जाति का सम्वर्धन शोभाकर बागों में जन-समूह को आकर्षित करने हेतु किया जाता है। इसे अंग्रेजी में 'जायेन्ट-बाम्बु' कहा जाता है। पश्चिम बंगाल विशेषकर कलकत्ता के आसपास इलाकों में 'बर्मा-बांस' एवं देहरादून के नजदीक के क्षेत्रों में 'भीम-रानस' के नाम से प्रचलित है। इसका उद्गम स्थान बर्मा तथा मलाया प्रायद्वीप है, परन्तु विश्व के विभिन्न उष्ण कटिबन्धीय उद्यानों में प्रचुर मात्रा में सम्बर्धन किया जाता है। भारतीय वनस्पति उद्यान में इसके प्रवेशन के बारे में विस्तृत प्रमाण प्राप्त नहीं है, परन्तु प्रकाशित लेखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रवेशन सन् 1831 में हुआ था। भारत के विभिन्न प्रान्तों जैसे अरुणाचल प्रदेश, आसाम. मणिपुर, नागालैण्ड तथा पश्चिम बंगाल में इसका सम्बर्धन अधिक मात्रा में होता है। इसके अलावा उत्तर प्रदेश तथा कर्नाटक में भी अल्प सम्बर्धन देखा गया है।

इस जाति के बांसों की ऊँचाई 25-30 मी० तथा मोटाई 20-25 से० मी० होती है। कान्ड-खोल पतली, चिकनी एवं बड़ी होती है जिसका आकार 36 – 45 × 15 – 20 से० मी० होता है। नये कोपलों की वृद्धि भी आश्चर्यजनक है जो प्रतिदिन करीब 100 से० मी० तक अंकित की गयी है। उद्यानों में तालाबों या जलश्रोतों के किनारे लगाये गये लम्बे-मोटे डील-डौल वाले इस जाति के बांस-पुञ्ज नयनगोचर प्रदेश की शोभा बढ़ा देते हैं। इसके बांसों का उपयोग फूलदानी, गमले एवं घर बनाने के सामग्री के रूप में किया जाता है।

इसका प्रसारण अँखुआ (आफसेट) तथा बीजों द्वारा किया जा सकता है। अँखुआ द्वारा विस्तार में नये अंकुर को पुराने कान्ड के साथ अलग करके दूसरे स्थान पर लगाना चाहिए। बीजों द्वारा प्रसारण में कठिनाई होती है क्योंकि बीज कभी-कभी एवं कम मिलते हैं। हावड़ा के भारतीय वनस्पति उद्यान में उग रहे एक बाँस-पुञ्ज में पुष्पन मार्च 1984 में हुआ एवं इससे प्राप्त बीजों के एकत्रीकरण एवं अंकुरण सम्बन्धी अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस जाति में अंकुरोदगम्-सक्षम बीज बनने का प्रतिशत बहुत ही कम होता है। वैसे इस जाति के पौधों पर किसी रोग या कीड़ों का आक्रमण नहीं देखा जाता फिर भी देख भाल आवश्यक होता है। इसके बाँस-पुञ्जों में हर वक्त कुछ न कुछ सूखे बाँस पाये जाते हैं जिन्हें कोठियों की सुन्दरता बनाये रखने के लिये निकालते रहना चाहिए।

डाइनोक्लोवा मैक्लैन्डीआई (Dinochloa maclellandii)

बाँस की यह जाति स्वजात रूप में पश्चिम बंगाल, आसाम, बंगलादेश, अन्डमान, बर्मा, इण्डोनेशिया आदि स्थानों में पायी जाती है। विभूषक गुण होते हुए भी

आर्थिक उपयोगिता कम होने के कारण सम्वर्धन सीमित रूप से होता है। जर्मप्लाज्म संग्रह योजना तथा शोभाकर बागबानी के अन्तर्गत भारत के कुछ स्थानों जैसे देहरादून का वन शोध संस्थान एवं हावड़ा के भारतीय वनस्पति उद्यान में इसका सम्बर्धन किया जाता हैं। एस० कुर्ज द्वारा 1863 में पेगु (बर्मा) से भारतीय वनस्पति उद्यान में प्रवेशन के लिए लाया गया था, तत्पश्चात् डी० ब्रान्डीस द्वारा भी 1880 में लाया गया।

इस जाति के बांस टेढ़े-मेढ़े आकृति के होते है। कान्ड की ऊँचाई लगभग 5-6 मी० तथा मोटाई 3-4 से० मी० होती है। कान्डखोल वर्तुलाकार, चमड़े के समान मुलायम एवं 15-20 × 18-22 से० मी० लम्बाई-चौड़ाई की होती है जो घने सुनहले बालों से ढकी रहती है। फल भाले के आकार का एवं पीछे की ओर मुड़ा होता है। यह कान्डखोल आधार पर गोलाकार होता है। पत्तियाँ बड़ी होती है। वृत्ताकार सड़कों के मोड़ पर अथवा चौराहों के कोने में झुण्ड में लगाये गये ये टेढ़े-मेढ़े बाँस-पुन्ज बहुत ही आकर्षक एवं कौतुहलप्रद लगते हैं। तालाबों, प्राकृतिक झरनों, नालों तथा नम स्थानों पर लगाये गये बांसपुन्ज भी सफलता से उगते हैं एवं नयनगोचर प्रदेश की शोभा भी बढ़ाते हैं।

प्रसारण अंखुआ द्वारा ही सम्भव होता है। इस जाति के बाँस पुन्जों पर सदैव सूखी पत्तियाँ एवं कान्डखोल दिखायी देती है जो सुन्दरता बनाये रखने में बाधक होती है अत: समय-समय पर इन्हें अलग करते रहना चाहिये। ऐसा देखा गया है कि बराबर नमी वाले स्थानों पर लगाये गये बाँस-पुन्ज पर सूखी पत्तियों की संख्या कम होती है।

जिजेन्टोक्लोवा अट्रोवायोलेसिया

[Gigantochloa atroviolacea]

'ब्लैक बाम्बु' के नाम से प्रचलित इस जाति का सम्वर्धन उष्णकटिबन्धीय उद्यानों में विलक्षण पौधों के रूप में किया जाता है। इसका जन्मस्थान जावा है एवं जावा के पश्चिम तथा मध्य भाग में प्रचुरता से उगाया जाता है। वन शोध संस्थान, देहरादून तथा भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा में इसके सम्वर्धन का उल्लेख जे० सी० वर्मा तथा के० एन० बहादुर ने अपनी पुस्तक 'कन्ट्री रिपोर्ट एण्ड स्टेट्स आफ रिसर्च आन बाम्बुस आफ इण्डिया में किया है जो सन् 1980 में प्रकाशित हुई थी। उस समय यह जाति जाइजेन्टोक्लोवा अटर प्ररूप ब्लैकम्युटेन्ट के रूप में जानी जाती थी। भारतीय वनस्पति उद्यान में इसके प्रवेशन के बारे में स्पष्ट जानकारी नहीं हो सका है परन्तु एस० एस० आर० बेनेट तथा आर० सी० गौड़ (1990) के पुस्तक "थरटीसेवेन बाम्बुस ग्रोईग इन इण्डिया" से पता चलता है कि यह 100 वर्ष पूर्व जावा से लाकर किया गया था।

इसके बाँस-पुन्ज जिजेन्टोकलोवा अटर की तरह ही लम्बे एवं गुच्छों के रूप में उगने वाले होते हैं जिनके कान्डों के निचले गांठों पर शाखायें विरले मिलती है एवं ऊपरी भाग नीचे की तरफ झुके हुए होते हैं। कान्ड 12-15 मी० लम्बे एवं 6-10 से० मी० मोटाई वाले होते हैं। नये कांडों का रंग पहले बैंगनी लिए हुए गहरा हरा फिर उम्र के साथ-साथ काला हो जाता है एवं नीचे के पोरों पर कभी-कभी हरी या पीली धारियाँ दिखायी देती है। कान्डखोल भंगुर एवं बराबर लम्बाई-चौड़ाई वाली होती है जिसके किनारों पर भूरे रंग की धारी होती है। कान्डखोल के फल सीधे, अन्डाकर, नुकीले तथा पीछे की ओर मुड़े होते हैं। यह जाति शोभाकर बागवानी तथा नयनगोचर प्रदेश के लिए उपयुक्त होती है। विस्तीर्ण स्थानों पर लगाये गये बांस-पुन्ज कौतूहलोद्दीपक एवं चित्ताकर्षक लगते हैं।

इसका प्रसारण कठिन होता है। अंखुआ द्वारा प्रसारण में पुराने कान्डों को नये अंकुर के साथ अलग करके लगाने के बाद उचित देखरेख में पौधे तो तैयार किये जा सकते परन्तु बचत प्रतिशत कम होता है। इस सुकुमार जाति के कान्ड भी कमजोर होते हैं जो हवा के झोकों से मध्य भाग से ही टूट जाते है या फट कर मुड़ जाते हैं। इसके बाँस-पुन्ज तैयार होने में काफी समम लगता है क्योंकि प्रत्येक वर्ष अँखुआ बहुत कम निकलता है। इस सुन्दर जाति के रख-रखाव में साधवानी जरुरी होता है। इसके कोठियों को साफ रखते हुए, टूटे एवं फटे हुए कांडों को अलग कर देना चाहिए। बाँस-पुन्जों में गोबर, पत्तियों के राख एवं हड्डी की खाद देने से अच्छा परिणाम मिलता है।

थर्सोस्टचायस ओलीवेरी (Thyrsostachys oliveri)

गुच्छों के रूप उगने वाली बांस की यह जाति बर्मा तथा थाईलैन्ड के नम वनों में स्वजात रुप में पायी जाती है। भारतीय वनस्पति उद्यान में इसका प्रवेशन सन् 1892 में अब्दूल हक द्वारा बर्मा के शानहील से लाकर किया गया। इस जाति के कान्ड चमकीले हरे रंग के 12-15 मी० लम्बे तथा 5-6 से० मी० मोटे होते हैं जिन पर ध्यान देने वाली ऊँचाई तक शाखायें नहीं होती, यदि होती भी है तो बहुत छोटी। गाँठे भी ज्यादा मोटी नहीं होती। कान्डखोल यथार्थ बड़े, मुलायम, सुडौल एवं संकरा होता है जिसकी लम्बाई 26-30 से० मी० चौड़ाई 12-15 से० मी० होती है। कर्ण-शष्कुली अविद्यमान तथा फल 18-20 से० मी० लम्बे होते हैं। ये कान्डखोल आधार पर पकड़े हुए पोरों के 3/4 भाग को ढके रहते हैं। नये अवस्था में हरे तथा पुराने होने पर नारंगी रंग से गुजरते हुए भूरे हो जाते हैं। उपरी भाग कुछ-कुछ गोलाकार एवं किनारे रोयेंदार होते हैं।

के० एन० बहादुर तथा पो० सी० गुप्त (1983) के लेख रिपोर्ट [वन चेतना—मैगजीन आफ स्टेट फारेस्ट सर्विस कालेज, देहरादून 1983] से पता चलता है कि सन् 1891 में बर्मा के बांसपुञ्जों में पुष्पन हुआ था जहाँ से बीज कलकत्ता तथा देहरादून भेजा गया था। बन शोध संस्थान, देहरादून तथा भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा इन दोनों जगहों पर बीज द्वारा उगाये गये पौधों में साथ-साथ पुष्पन सन् 1940 में हुआ था। वैसे सन् 1986 में भी भारतीय वनस्पति उद्यान में उग रहे बांस पुञ्जों में पुष्पन देखा गया जिसकी रिपोर्ट आर० बी० बोस आदि ने अपने लेख 'बाम्बुस आँफ इन्डियन बोटेनिक गार्डेन' में किया है। सन् 1986 के पुष्पन के पश्चात् प्राप्त बीजों में 40 प्रतिशत अंकुरोद्गम् हुआ एवं इससे तैयार हुए पौधे अच्छी तरह से उग रहे हैं। इन तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि इसका जीवन-चक्र 46-50 वर्ष है।

सीधे बांस वाले तथा गुच्छों के रुप में उगने वाली यह जाति जिसके चमकीले हरे रंग के कान्डों पर अधिक ऊँचाई तक शाखायें नहीं होती एवं कान्डखोल चिपके होते हैं, अत्यन्त सुन्दर एवं सुहावनी लगती है। इसे उद्यान मार्गों के किनारे कतारों में, बड़े-बड़े इमारतों, भवनों, हरित एवं रक्षागृहों के प्रवेश द्वार के किनारे पर लगाया जा सकता है। प्रसारण अंखुआ तथा बीज द्वारा होता है। इस जाति के बांस पुञ्जों पर किसी रोग या कीट का आक्रमण नहीं देखा जाता फिर भी कोटियों की सुन्दरता बनाये रखने के लिए देख भाल करना उचित होता है।

उद्यानों, पार्कों तथा अन्य स्थलों के लिए बागबानी सम्बन्धी अन्य पौधों की तरह इन विभूषक बांसों को लोकप्रिय बनाना चाहिए जो चित्रकार, कवि, हस्तकलाकार, उद्यानविद तथा विज्ञानियो के लिए रुचि वृद्धिकारक भी है। नर्सरियों तथा उद्यानविद्या, कृषि एवं वन से सम्बन्धित विभागों को इसे बड़े पैमाने पर उगाकर सुन्दरता तथा उपयोगिता के लिए वितरण करना चाहिए। ★

अतीत के कुछ अविस्मरणीय क्षण—हमारी रालम यात्रा

मेघ सिंह

वैसे तो प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ न कुछ अविस्मरणीय क्षण अवश्य ही आते हैं, किन्तु कुछ क्षण यात्राओं के दौरान भी ऐसे गुजरते हैं, जो हमारे मस्तिष्क पर हमेशा-हमेशा के लिये एक अमिट छाप छोड़ जाते हैं। हमारे विभाग का मुख्य कार्य ही पहाड़ों में वनस्पतियों की खोज से सम्बन्धित है, जिस कारण हमें बहुत से दूरगामी क्षेत्रों का दौरा करना पड़ता है। ऐसे ही एक दौरे के दौरान बीते कुछ दिन मेरे लिए एक यादगार बनकर रह गये हैं।

बात सन् 1969 की है। अगस्त माह की घनघोर बरसात। ऐसे में देहरादून छोड़कर हम लोग निकले कुमाऊँ के रालम ग्लेशियर क्षेत्र की ओर। हम लोग से मेरा तात्पर्य अपने अन्वेषक-दल से है। इस पाँच व्यक्तियों के अन्वेषक दल का नेतृत्व हमारे परिमण्डल के ही श्री पी० सी० पन्त कर रहे थे। जैसा कि पहले ही बता चुका हूँ, हमारे इस दौरे का मुख्य उद्देश्य इस क्षेत्र की कुछ दुर्लभ वनस्पतियों, पेड़-पौधों की खोज था। चूँकि हमारे विभाग का इस क्षेत्र का यह प्रथम दौरा था, हमारा सम्पूर्ण दल रामल क्षेत्र को प्राकृतिक विषमताओं से बिल्कुल अनभिज्ञ था। ऐसे में हमने अपने आपको बहुत सी अनजान परिस्थितियों का सामना करने के लिए चलते समय ही भगवान पर छोड़ दिया था। पहाड़ों की घनघोर बरसात, और सड़कें बस नाम मात्र की। ऐसे में श्री पी०सी० पन्त, बैज नाथ, श्याम सिंह, बी० डी० नैथानी एवं मैं लगभग दो तीन दिन में नाचनी तक पहुँच ही गये, जहाँ से हमारी वास्तविक पैदल यात्रा होनी थी। नाचनी पहुँचते ही हमारी गतिविधियों ने गति पकड़ी, क्योंकि ऐसे मौसम में सबसे अहम काम था कुलियों को मुन्सियारी की तरफ ऊपर चलने के लिए तैयार करना।

मुन्सियारी पंचाचुली की गगनचुम्बी चोटियों के नीचे बसा एक छोटा सा पहाड़ी कस्बा है। उन दिनों तो हमें यहां तक पैदल ही पहुंचना पड़ा क्योंकि यहीं से रालम की ओर जाते हैं। नाचनी से मुन्सियारी पहुँचने में ही हमारे इस छोटे से काफिले को दो दिन का समय लग गया। मुन्सियारी से खच्चरों का प्रबन्ध किया गया क्योंकि कुलियों के लिए अधिक ऊँचाई पर सामान ढोना कठिन होता है। खच्चरों का मालिक उत्तम सिंह पांगती एक अनुभवी आदमी था और उसे ही हमने अपने गाईड के रूप में स्वीकार कर लिया। सभी तैयारियाँ पूरी करने के पश्चात् हमने वहाँ से अपने गन्तव्य के लिये प्रस्थान किया।

अपने कार्य के अनुसार स्थान-स्थान पर पड़ाव डालते हुए हम लोग मारतोली पहुँचे। हिमालय की हिमाच्छादित घाटियों में बसे गांवों में अन्तिम गाँव मारतोली ही है। इससे 5-6 मील उत्तर में मिलम ग्लेशियर है एवं पूर्व की ओर बृजगंग पर्वत है, जिसकी ऊँचाई लगभग 16000 फीट है। यही ऊँचाई पार करनी थी हम सबको अपनी मंजिल पर पहुंचने के लिए। मारतोली एवं बृजगंग के बीच मिलम से निकली गौरी गंगा कुमाऊँ में हमारे लिए उतनी ही पूजनीय थी जितनी गढ़वाल में अलकनन्दा एवं भागीरथी।

नदी के पार, मारतोली के ठीक सामने ही बुरफू वासियों का अभिनन्दन हम सभी के दिलों को छू गया। मारतोली की भाँति बुरफू भी इस घाटी का अन्तिम पूर्वी गांव है। यहाँ के वासियों का जीवन अत्यन्त कठिन है।

सर्दी के छः माह ये लोग अपने परिवारों एवं भेड़-बकरियाँ इत्यादि लेकर मुन्यिसारी व अन्य निचले गाँवों में चले जाते हैं। केवल गर्मियों व बरसात के ही 5-6 महीनों के दौरान ये लोग यहाँ आते हैं। सर्दियों से चले आ रहे इस आवागमन ने इनके जीवन को स्थायी रूप से अनिश्चित-सा बना दिया। अपना पेट भरने के लिये अपनी अर्द्धवार्षिक फसल में बुरफू वासो आलू, फाफर आदि उगाते हैं। यहाँ आलू अत्यधिक स्वादिष्ट व पौष्टिक होता है। बुरफू से हम लोग आगे की ओर रवाना हुये। कुछ दूर चलने के बाद बृजगंग पर्वत की पगडंडियों में प्रवृष्टि हो गये। सन् 1962 में चीन और भारत का युद्ध हुआ था और उस समय से तिब्बत पर चीन का अधिकार हो गया। यह वही रास्ता था जब कभी इधर से भारत और तिब्बत व्यापार हुआ करता था। तबसे अब तक यह रास्ता वीरान हो गया। अब शायद ही कभी इधर से भेड़-बकरी चराने वाले गुजरते होंगे। चलते-चलते शाम हो आयी। सूर्य अस्त होने में लगभग एक घण्टा ही शेष होगा, 12-13 हजार फीट की ऊँचाई पर भोज पत्र का एक जंगल आया जिसमें बहुत से पुराने पेड़ टूट कर जमीन पर इधर-उधर बिखरे पड़े थे। वहीं पास में एक नाला बह रहा था, जहाँ हमने डेरा डालना उचित समझ कर अपने तम्बू लगा दिये। सर्दी काफी अधिक। हमने भोज पत्र की सूखी लकड़ियाँ एकत्र की और आग जलाई। उस समय रात बहुत ही अन्धेरी थी। तारे आसमान में जगमगा रहे थे। बृजगंग पर्वत की चोटियाँ व ढलान बर्फ से ढके हुये ऐसे चमक रहे थे जैसे सफेद चादर बिछा दी गई हो। सूनसान वातावरण के पास में चर रहे हमारे खच्चरों के गले में बँधी घण्टियाँ लगातार आवाज करती रहीं और वातावरण की खामोशी को तोड़ती रहीं।

सबेरा होते ही हमने बृजगंग पर्वत की चोटियों के दर्शन किये। मौसम सुहाना था। मन में उत्सुकता थी, बर्फ से ढकी इन चोटियों तक पहुंचने की। इसी उत्सुकता में हमने जल्दी ही नाश्ता कर लिया और कुछ भोजन साथ लेकर हम चोटियों की ओर बढ़ने लगे। जैसे-जैसे ऊँचाई बढ़ती जा रही थी हमारी साँस भी फूलती जा रही थी। दोपहर के लगभग एक-दो बजे हम बर्फीले क्षेत्र तक पहुंच गये। हमने दिन का भोजन किया और आगे चल पड़े। बर्फ में चलना शुरू में बड़ा ही रोचक लगा, परन्तु कुछ देर बर्फ में चलने के बाद पैरों में ऐसा महसूस हो रहा था मानों पैर आग में जल रहे हों। घुटनों तक बर्फ थी। चलना भी कठिन हो रहा था। आगे-आगे हम और पीछे-पीछे खच्चर सामान लेकर चल रहे थे। शाम ढ़ल चुकी थी। अन्धेरा होने में लगभग एक घण्टा ही शेष होगा और हम चोटी के करीब पहुँच गये। संयोग की ही बात थी कि चोटी पर सबसे पहले मैं ही पहुंचा और गर्व से मैंने पीछे आ रहे साथियों की ओर हाथ हिलाया और जैसे ही मैंने पलट कर देखा, मैं अवाक रह गया। आगे रास्ता नाम की कोई चीज नहीं थी। तब तक और साथी भी ऊपर चढ़ चुके थे। आगे रास्ता न होने कारण हम चिन्तित हो गये क्योंकि अब समय बहुत ही कम रह गया था। मुश्किल से आधा घण्टा बाद ही बृजगंग की चोटियाँ अन्धकार में डूब जाती। तब तक उत्तम सिंह पांगती व खच्चर आदि भी ऊपर आ गये। किसी की समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। समय बहुत कम होने के कारण हम वापस भी नहीं जा सकते थे। 16000 फीट की ऊँचाई पर बर्फ में कैम्प करने का साधन भी हमारे पास नहीं था। कुछ देर बर्फ में खड़े रहने से पैरों की जलन भी बढ़ रही थी। अनिष्ट की सम्भावना से हम हताश हो गये। मन में विचार आने लगा कि शायद हमारी मौत ही हम सबको वहाँ ले गई थी। खच्चर वालों ने सामान बर्फ में ही फेंक दिया। सब को अपनी-अपनी जान बचाने की जो पड़ी थी। कुछ पल

विचार करने के बाद मैंने साहस किया और मैं बैठ कर पैरों से बर्फ धकेलता हुआ कैंचीनुमा रास्ता बनाता गया; किन्तु इतना खतरनाक कि यदि जरा भी पैर फिसलता तो मैं सीधा मौत की गोद में चला जाता। वहाँ तो यह कहावत सिद्ध हो रही थी कि मरता क्या न करता। जब मैं सकुशल नीचे पहुँच गया तो मेरे अन्य साथी भी मेरे पीछे-पीछे आने लगे। ईश्वर की कृपा से हम सभी सकुशल नीचे उतर आये। उत्तम सिंह पांगती अपने खाली खच्चरों सहित हमारे सामने था। हम चकित रह गये कि वह किस तरह खच्चरों को लेकर आया। बस वही कपड़े हमारे पास थे जो हमने अपने शरीर पर पहन रखे थे क्योंकि हमारा सारा सामान ऊपर ही छूट गया था। रालम गाँव वहाँ से चार-पाँच मील दूर था। अब हमारे लिए गाँव पहुँचना बहुत जरूरी हो गया था। हम लोग अन्धेरे में ही ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी रास्तों से गुजरते हुये रात्रि 9-10 बजे रालम गाँव पहुंच गये। पाँगती जी के कुछ परिचित लोग वहाँ रहते थे। उनको इकट्ठा किया। सभी हालातों से उन्हें अवगत कराया। उन्होंने ठहरने के लिए हमें एक कमरा दिया। खाने की व्यवस्था की। कुछ ओढ़ने को दिया।

काफी मात्रा में लड़कियाँ आदि भी दी, जिन्हें जला कर किसी तरह से हमने रात गुजारी। सुबह गाँव के लोगों से अपना सामान लाने के लिए प्रार्थना की। वे लोग 3-4 बजे किसी तरह हमारा सामान नीचे ले आये और फिर हमारा कार्यक्रम सुचारु रूप से चल पड़ा। रालम गांव भी मारतोली व बुर्फू जैसा ही है। इसके पश्चिम में बृजगंग पर्वत है। पूर्व में नेपाल तथा उत्तर में तिब्बत से लगा हुआ रालम ग्लेशियर है। यहाँ कस्तूरी मृग काफी संख्या में पाये जाते हैं। हड़ताल पत्थर भी काफी मात्रा में यहां पाये जाते हैं, जो औषधियों के काम में आता है। यहां आलू सबसे अच्छा होता है। हमें यहां एक सप्ताह कार्य करना था। इस अवधि में काफी लोगों से सम्पर्क हुआ उन्होंने हमें बताया कि वापस बृजगंग से न जाकर हम लोग रालम घाटी से ही जायें। वहाँ पेड़ पौधे भी काफी मात्रा में थे और रास्ता भी आसान था। परन्तु खच्चरों का उस रास्ते होकर जाना सम्भव नहीं था। अतः हमने अपने कार्य क्षेत्र को बढ़ाने तथा सुरक्षित रास्ते से वापस लौटने का निर्णय लेकर ठीक सातवें दिन खच्चरों को बृजगंग के रास्ते से भेज दिया। हमें दूसरे दिन जाना था। तीन दिन सफर तय करने के बाद हमें मुंसियारी पहुँचना था। अपने पास कुछ विस्तर, कार्य से सम्बन्धित सामान तथा 3 दिन का राशन रख कर शेष सामान खच्चरों पर भेज दिया था। विडम्बना यह कि हमने जिस दिन खच्चरें वापस भेजी उसी दिन से बर्फ भी गिरने लगी और पूरी घाटी बर्फ से ढ़क गई। दूसरे दिन हमें वहाँ से कूच करना था, परन्तु बर्फ पड़ने के कारण हम न जा सके। लगातार तीन दिन तक बर्फ पड़ती रही, साथ ही हमारा पूरा राशन भी समाप्त हो चुका था। इससे हम काफी चिन्तित हो गये। हमने आपस में तय किया कि कुछ भी हो हमें दूसरे दिन वहाँ से निकलना ही होगा। हमने कुलियों को भी तय कर लिया परन्तु यह हमारा दुर्भाग्य ही था कि चौथे दिन भी बर्फ पड़ती ही रही, बर्फ की परवाह किये बिना ही हम रालम से निकल पड़े। हमारे पास खाद्य सामग्री के नाम पर थोड़ा आटा और एक कटोरी चावल मात्र ही शेष था। सुबह हमने पराठे बनाये, जो कुल दस-बारह ही बन सके। हमें दो-दो पराठे व एक-एक प्याली चाय में ही दिन व्यतीत करना था तथा पूरा दिन चलना भी था।

रालम गांव को छोड़ कर अभी हम बाहर आये ही थे कि हमारे सामने की पहाड़ी से एक भयानक आवाज

आती हुई सुनाई दी। देखते-देखते बर्फ का एक बहुत बड़ा ग्लेशियर टूटा और पूरी घाटी में बिखर गया। यह दृश्य देख कर हमारे दिल दहल गये। इस घटना से हम काफी भयभीत हो गये थे। कोई भी ग्लेशियर क्षण भर में हमारा जीवन समाप्त कर सकता था। पल भर को हमारे मन में विचार आया कि हम वापस हो लें, परन्तु हमने धैर्य से काम लिया व भगवान का नाम ले कर आगे ही बढ़ चले। बर्फ अब भी उसी तरह पड़ रही थी। कुछ ही दूर चले थे कि एक नाला हमारे सामने था, जिसका पुल टूट चुका था, गर्दिश हमारा रास्ता रोक रहा था परन्तु हमने भी हिम्मत नहीं हारी। मैं देहरादून के एक गांव का निवासी हूँ। मेरा गांव भी दो नदियों बीच स्थित है। बरसात में मुझे अकसर नदियों का सामना करना पड़ता है। अतः पहले से ही अभ्यस्त होने के कारण मैंने अपने साथियों को प्रेरित किया और हम अपने साहस से उस नदी को भी पार करने में सफल हो गये। कुछ देर तक चलने के पश्चात बर्फीला क्षेत्र समाप्त हो गया और हमने राहत की सांस ली। चलते-चलते शाम हो गई और हम साबा नामक एक डंडियार तक पहुँच गये। एक गुफा-नुमा चट्टान को डंडियार कहते हैं, जिसमें बरसात में अकसर भेड़-बकरी चराने वाले आश्रय ले लेते हैं। यह डंडियार इतना बड़ा था कि इसमें हजारों बकरियाँ रह सकती थीं। हमने भी यहीं रात्रि-विश्राम किया। हमारे पास भोजन तो था नहीं। हाँ, चलते समय हमने कुछ आलू अवश्य ले लिये थे। इन्हें उबाल कर हमने रात के भोजन के रूप में ग्रहण किया तथा अपने पेट की अग्नि को शांत किया और सो गये। सुबह हमने बचे हुए चावल व दाल को उबाल कर पतली खिचड़ी के रूप में ग्रहण किया, जो प्रत्येक व्यक्ति के हिस्से में एक-एक कटोरी ही मुश्किल से आ पाई। हम फिर चल पड़े आगे की ओर, और अभी 3-4 मील ही चले होंगे कि फिर हमारे दिलो दिमाग पर प्रहार हुआ। नीचे से कुछ आदमी ऊपर रालम को जा रहे थे। उन्होंने हमें बताया कि नीचे स्थित बांतो उनका गाँव है। बांतो से 3-4 मील पहले रालम ग्लेशियर से जो नाला आया है, उसका पुल टूट गया है। वे लोग उस पर एक लकड़ी रख कर उसे पार कर आये हैं। उन्होंने हमें बताया कि हमारे लिए वहाँ से गुजर जाना सम्भव नहीं है। हमारे सामने फिर संकट व चुनौती आ गई थी। आगे बढ़ने के अलावा हमारे पास और कोई चारा न था। भूख की परवाह किये बिना हम आगे बढ़ते गये और जल्दी-जल्दी किसी तरह नाले तक आ पहुंचे। कुली हमारा सामान लेकर धीरे-धीरे आ रहे थे। वास्तव में नाले पर पुल की जगह एक लम्बी लकड़ी रखी थी, जिस पर से गुजरना हमारे लिए असम्भव था। नाले के दूसरी ओर जंगल था। हमने यह सोच कर कि उस ओर शायद कुछ बल्लियाँ मिल जायें, उस लकड़ी से पार करने का साहस किया। हमारे साथियों ने मुझे ऐसा करने से मना किया, परन्तु मै अपना सन्तुलन बनाये हुए नाले के ऊपर से गुजर गया। फिर मैने अपने साथी श्याम सिंह को आने को कहा। वह भी साहस कर पार हो गये। शेष तीन सदस्यों को हमने उधर ही रूकने को कहा। हम जंगल की ओर चल पड़े। जंगल में ढूँढ़ने पर हमें एक बल्ली दिखाई दी। उसे कन्धों पर उठा कर हम नाले तक ले आये, परन्तु वह 2-3 फीट छोटी रह गई, फिर भी हमने हिम्मत नहीं हारी और हम फिर जंगल में जाने के लिए पलट गये। तभी पानी में कुछ गिरने की आवाज हुई और हमने पलट कर देखा तो हमारी चीख गले में दब कर रह गई। हमारे साथी बैजनाथ जो दूसरी ओर चट्टान पर बैठे थे, नाले में गिर चुके और देखते ही देखते वह 20-25 फीट गहरे झरने में चले गए और हम सब की आँखों से ओझल हो गये। सभी के होशो हवास गुम हो गये क्योंकि मदद के लिए नीचे जाने के लिए कोई रास्ता

नहीं था। दोनों तरफ चट्टानें थीं। किसी तरह चट्टानों से सरकता हुआ मैं नीचे नाले में पहुँचा। मुझे वहां कुछ भी नजर नहीं आया। कुछ दूरी पर यह नाला गौरी गंगा में मिल गया था। अनिष्ट की सम्भावना से दिल दहल गया, किन्तु कुछ समय बाद अचानक मेरी नजर एक चट्टान के नीचे से पहुँची। वहां एक कुन्छ बना हुआ था और पानी उस चट्टान के नीचे से घूम कर आ रहा था। श्री बैजनाथ जी का सिर मुझे दिखाई पड़ा, परन्तु मैं कर भी क्या सकता था, क्यों कि मैं इस ओर था और वह दूसरी ओर चट्टान के नीचे फँसे हुये थे। पूरा शरीर पानी में डूबा हुआ था। उनका साहस बढ़ाने के लिए मैं इधर से आश्वासन दे रहा था। अभी जिस चट्टान के नीचे वह फँसे हुये थे वहाँ से बाहर निकालना किसी के बस की बात नहीं थीं। अचानक उन्होंने कुछ हरकत की। अपना शरीर चट्टान के अन्दर सेऊपर कीओर घसीटने लगे। मैं यह सब कुछ अपनी आँखों से देख रहा था। एकाएक वह चट्टान के अन्दर चले गये और कुछ क्षण बाद वह मुझे चट्टान के ऊपर दिखाई दिये। उसी क्षण वह बेहोश होकर गिर पड़े। यह एक ईश्वरीय चमत्कार था। जिस चट्टान के नीचे वह फँसे थे, वहाँ दो चट्टानों का जोड़ था और उन दोनों चट्टानों के बीच सिर्फ इतनी जगह थी कि उसमें से कोई पतला-दुबला व्यक्ति ही निकल सकता था। संयोग की बात यह थी कि श्री बैजनाथ जी भी पतले दुबले व्यक्ति हैं। उनको बाहर निकला देख मैं चट्टान के ऊपर आया और मैंने अपने बिलख रहे साथियों को यह शुभ सूचना दी कि श्री बैजनाथ जी बाहर निकल गये हैं, परन्तु वह बेहोश हो गये हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें ऊपर कैसे लाया जाये, हम अभी यह सोच ही रहे थे कि हमारे कुली भी घटना-स्थल पर आ पहुँचे। वे चट्टानों से नीचे उतरे और किसी प्रकार श्री बैजनाथ जी को ऊपर ले आये। तब तक उन्हें होश आ चुका था। 20-25 मिनट तक ग्लेशियर के पानी में रहने के रहने कारण उनका शरीर नर-कंकाल की तरह अकड़ गया था, मानों शरीर पर मांस नाम की कोई चीज ही न रह गई हो। उसी समय हमने उनके कपड़े बदले व आगजला कर उनके शरीर को गर्म किया। श्याम सिंह और मैं नाले के इस ओर और वे सभी दूसरी ओर। कुलियों ने हमें आगे पातों गांव चले जाने कहा, जो कुलियों का ही गांव था। उनके परिवार के कुछ सदस्य पातों गांव में भी रहते थे। उन्होंने गांव के मुखिया को इस घटना की सूचना देने व गांव से कुछ आदमियों को पुल बनाने के कुल्हाड़ियाँ लेकर भेजने को कहा और हमें वहीं गाँव में रूक जाने का निर्देश दिया। थोड़ा-थोड़ा अन्धेरा होने लगा था। तेज कदमों से हम लगभग एक घण्टे में गांव पहुँच गये। संयोग से उस दिन गांव में सिर्फ दो ही आदमी मिले। मुखिया जी ने उन्हें तुरन्त घटना-स्थल पर जाने के निर्देश दिये। वे दोनों तुरन्त चल पड़े। हम दोनों को हताश देखकर मुखिया जी की बूढ़ी पत्नी वे अपनी भाषा में कुछ कहा। हम तो समझ न सके, परन्तु उनका इशारा था 'मैं दूध निकाल कर लाती हूँ, तुम्हें चाय बनाकर दूँगी, तब तक खीर खा लो। हमारा पेट तो खालो ही था। हमारे साथी पीछे फँसे हुए थे इसलिए खाने की इच्छा नहीं हुई, फिर भी उस वृद्धा के आग्रह को हम नटाल सके और जैसे-तैसे कुछ खीर खाई। कुछ देर बाद उन्होंने हमें चाय दी। रात को भोजन कराया और सोने का प्रबन्ध किया। अपने फँसे हुए साथियों की चिन्ता में हमें नींद नहीं आ सकी।

रात के लगभग दस बजे का समय था। हमें अपनी ओर आते हुए कुछ पद चाप सुनाई पड़े और कुछ ही क्षण में दरवाजेपर दस्तक हुई। आवाज जानी पहचानी लगी। यह आवाज हमारे एक कुली नन्दन सिंह की थीं।

हम उठ खड़े हुये। घबरा कर हमने दरवाजा खोला। नन्दन सिंह के साथ हमारे साथी भी बाहर खड़े थे। हमारे साथ ही सभी कमरे में प्रविष्ट हुये। मुखिया जी व उनकी पत्नी भी उठ गये। उन्होंने तत्काल आग जलाई। हम सभी आग के चारों ओर बैठ कर तापने लगे, और बैजनाथ जी को चारपाई पर लिटा कर गर्म कपड़ों से ढक दिया। उनकी हालत अब भी काफी खराब थी।

इस बीच दो आदमी पांतों से कुल्हाड़ी लेकर घटना-स्थल पर पहुँचे। हमारे कुलियों ने पुल बनाने का प्रयास जारी रखा और अन्त में पुल बनाने में वे सफल हो गये। चूँकि रात को वहाँ आश्रय लेने का कोई स्थान नहीं था, इस लिए वे लोग गाँव तक पहुँचने की कोशिश कर रहे थे। मुखिया जी की पत्नी ने सभी लोगों के लिये खाना बनाया। पूरी रात श्री बैजनाथ जी की सिकाई व देखभाल सभी लोग करते रहे। मुखिया जी व उनकी पत्नी की सज्जनता व सहृदयता का शब्दों में वर्णन कर पाना मुझे असम्भव प्रतीत हो रहा है। उनके लिए मैं इतना ही कह सकता हूँ कि उनका स्नेह और अपनापन मैं जीवन भर नहीं भुला सकता। दूसरे दिन सबेरे ही हमने चाय आदि पीकर मुखिया जी से विदा ली और मुन्शियारी की ओर चल पड़े। बैजनाथ जी लकड़ी का सहारा लेकर स्वयं धीरे-धीरे पैदल चल रहे थे। मुन्शायरी पहुंचने पर हमें मालूम हुआ कि उत्तम सिंह पांगती व खच्चरें मार-तोली के पास एक पुल के टूट जाने के कारण वहीं फँसे हुये हैं। हमने अपने कुली साथियों को सधन्यवाद विदा किया। दो-तीन दिन बाद खच्चरें हमारा सामान लेकर मुन्शायरी पहुँची और हम सभी ने देहरादून के लिए प्रस्थान किया।

★

सेहत हजार नियामत है

विजय कृष्ण

किसी कवि ने कहा है—

"सुन्दर है विहग सुमन है सुन्दर।
मानव, तुम सबसे सुन्दरतम॥

मानव ईश्वर की श्रेष्ठतम सृष्टि है। मुनियों का कहना है कि बड़ी ही तपस्या से और कई योनि से होकर गुजरने के पश्चात ही मानव का जीवन मिलता है। हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि सभी धर्म साधनों का मूल हमारा शरीर ही है। वस्तुतः मनुष्य के जितने भी कार्य-कलाप हैं, उन सबों के मूल में उसका शरीर ही है। यह शरीर जब तक पूर्णतया स्वस्थ नहीं रहता, तब तक इसके द्वारा कोई भी कार्य नहीं हो सकता है। संसार में जितने भी कार्य हैं उन सबों में सबसे महत्वपूर्ण है अपने शरीर को स्वस्थ रखना।

जीवन संग्राम में सफलता पूर्वक जूझने तथा मनः प्रसाद की प्राप्ति के लिये अच्छी सेहत का होना निहायत जरूरी है। सेहत के धनी व्यक्ति स्फूर्ति तथा ओज से पूर्ण होता है। तन रोग रहित तथा स्वस्थ रहने के कारण उसका मन सदैव प्रसन्न रहता है। वह प्रत्येक कार्य को प्रसन्नता पूर्वक तथा सरलता से सम्पादित करता है। उसके चेहरे पर कभी भी मायूसी नजर नहीं आती।

शरीर और मन से स्वस्थ रहने के कारण हृदय में बुरे विचार उत्पन्न नहीं होते तथा बुरे कार्य नहीं कर सकता। शरीर तथा मन से स्वस्थ व्यक्ति ही संसार का वास्तविक उपभोग करता है। कठिन से कठिन विपत्तियाँ आने पर भी ऐसा व्यक्ति नहीं घबड़ाता, किन्तु अस्वस्थ व्यक्ति को बात-बात में घबड़ाहट होती है। आत्मविश्वास दृढ़ता, स्थिरता तथा धैर्य आदि गुण ऐसे हैं, जिनका शारीरिक स्वास्थ से अभिन्न सम्बन्ध है।

किन्तु दुर्भाग्य की बात यह है कि मनुष्य अपनी जड़ता और आलस्य के कारण स्वास्थ्य की अमूल्य शक्ति को स्वीकार करता हुआ भी उसकी प्राप्ति के लिये कुछ भी नहीं करता। फलतः स्वास्थ्य साधन के अभाव में उसका शरीर कुछ ही दिनों में नाना प्रकार के रोगों का केन्द्र हो जाता है। उस दुर्भाग्य ग्रस्त मनुष्य का अधिकांश समय वैद्यों, हकीमों तथा डाक्टरों के यहाँ दौड़ने में ही समाप्त हो जाता है।

यह सत्य है कि जबतक हमसे कोई वस्तु छिन नहीं जाती, तबतक उसका मूल्य नहीं समझते। विद्यार्थी जीवन में हम पढ़ने से जी चुराते हैं परन्तु जीवन की वास्तविकताओं के सम्मुखीन होने पर हमें शिक्षा का मूल्य पता चलता है। पीड़ा से कराहता हुआ एक बीमार मनुष्य अच्छी सेहत का मूल्य समझ सकता है। प्रकृति के नियमों की अवहेलना करते हुए शरीर के ऊपर जुर्म करने के हम इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि हम अच्छी सेहत के मूल्य को भुला बैठे हैं। जिसका शरीर स्वस्थ नहीं है, जो सर्वदा रोगों से पीड़ित रहा करता है, वह सभी साधनों से सम्पन्न रहने पर भी इस संसार का आनन्द नहीं उठा सकता। मान लिया कि आपके पास बड़ी-बड़ी अट्टालिकायें हैं, इच्छा करते ही कोई भी वस्तु आपके उपभोग के लिये सामने अविलम्ब आ सकती है, पर यदि आप शरीर से स्वस्थ नहीं हैं तो उन अट्टालिकाओं तथा विलास सामग्रियों की आपके लिये कोई भी उपयोगिता नहीं है। अतः संसार का वास्तविक आनन्द उठाने के लिये स्वस्थ शरीर

का होना परमावश्यक है। प्रत्येक मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि वह अपनी तन्दुरुस्ती को ठीक रखने के लिये कुछ भी कसर उठा न रखे। शरीर के अंग-प्रत्यंग एक दूसरे से ताल-मेल रखते हुए इस प्रकार कार्यरत हैं कि हमें इनका ऐहसास भी नहीं होता। परन्तु शरीर का जब कोई भी एक अंग पीड़ित होकर ताल से बेताल हो जाता है, पूरे शरीर को अर्थात् हमें रोगी बना देता है तब जाकर कहीं हमें महसूस होता है कि अच्छी सेहत का होना कुदरत का वरदान है।

प्राचीन भारत के निवासी अत्यन्त स्वस्थ जीवन व्यतीत करते थे और शतायु हुआ करते थे। आधुनिकयुग के कर्मव्यस्तता में आज का मनुष्य ऐसे उलझ गया है कि उसे अपनी सेहत की ओर ध्यान देने की फुरसत ही नहीं मिलती और जब मिलती है तब तक बहुत देर हो चुकी होती है।

बहुत से लोग युवावस्था के पार होते-होते अस्वस्थ रहने लग जाते हैं। अस्वस्थता हमारे स्वभाव को चिड़-चिड़ा बना देती है। यह सिर्फ हमारे अपने जीवन को ही नहीं बल्कि परिवार के अन्य सदस्यों तथा मित्रों आदि के जीवन में भी कटुता भर देती है।

समय रहते ही अपने स्वास्थ की ओर उचित ध्यान दें। इसके लिये कोई विशेष मेहनत की आवश्यकता नहीं। बस स्वास्थ्य रक्षा के कुछ साधारण नियमों का पालन करना है। हमें यह कदापि नहीं भूलना चाहिये कि प्रकृति की नजर बड़ी तेज है। जो भी उसके नियमों को अवहेलना करता है, उसे सजा अवश्य ही भोगनी पड़ती है। देर हो सबेर हो, प्रकृति इसका बदला अवश्य ही ले लेती है।

प्रकृति ने कुछ नियम बनाये हैं। पशु-पक्षी भी प्रकृति के इन नियमों का कठोरता से पालन करते हैं। परन्तु मनुष्य जैसे-जैसे उन्नति करता जा रहा है, अपने जीवन की व्यस्तता को बढ़ाता चला जा रहा है और प्रकृति से दूर हटता जा रहा है।

नियम का दूसरा नाम ही जीवन है। सूर्य, चन्द्र, तारे, पृथ्वी आदि जितने भी प्राकृतिक उपादान है, सभी नियम से बधे हैं। इनके नियम में कभी कोई व्यतिक्रम नहीं होता। मनुष्य का जीवन भी प्राकृतिक उपादानों के समान ही नियम बद्ध है। इन्हीं में से एक है स्वास्थ रक्षा का नियम।

वस्तुतः स्वास्थय रक्षा के नियमों के पालन का अभ्यास बचपन से ही बच्चों में उनके माता-पिता द्वारा डाली जानी चाहिये। समय से जागना-सोना, खेल-कूद, शरीर की नियमित सफाई, खाने-पीने में सावधानी इत्यादि कुछ बड़े ही सरल नियमों के पालन के अभ्यास से वे सदा स्वस्थ एवं रोगमुक्त होकर अच्छी सेहत के हकदार हो सकते हैं।

अच्छी सेहत के लिये मुख्यतः चार बातें आवश्यक होती है। पौष्टिक भोजन, स्वच्छता का पालन, समुचित मात्रा में व्यायाम तथा मानसिक शांति। सर्वप्रथम हमारा भोजन सरलता से पच सकने वाला सन्तुलित, सात्विक, ताजा, और हल्का होना चाहिये। गरिष्ठ भोजत तथा उत्तेजक मादक पदार्थो के सेवन से बचना चाहिए। ये हमारे पाचन शक्ति पर बोझ बन जाते हैं और स्वास्थ्य का हानि करते हैं। अति भोजन तो कभी भी किसी हालत में नहीं करनी चाहिये। उत्तम स्वास्थ्य के लिये उत्तम निद्रा आवश्यक है। दिन भर की शारीरिक और मानसिक थकान को दूर करने के लिये ईश्वर ने हमें निद्रा का वरदान दिया है। अच्छी निश्चित और पूरी नींद होने से शरीर और मन तरोताजा हो जाता है और प्रफुल्लित होकर अगले दिन के संग्राम से जूझने के लिये तैयार हो जाता है।

सन्तुलित भोजन और उत्तम निद्रा के साथ-साथ ही उत्तम स्वास्थ्य के लिये व्यायाम बहुत जरूरी है। बचपन से ही बच्चों को खेलकूद और व्यायाम के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये। हर आयु और हर अवस्था के लिये अलग-अलग व्यायाम होते है। अवस्था और शक्ति के अनुसार किया गया व्यायाम अधिक लाभदायक होता है। अधिक आयु वालों के लिये सुबह-शाम टहलना ही उत्तम और सरल व्यायाम है।

हमारे शरीर का ढाँचा हड्डियों से निर्मित है और इन हड्डियों में असंख्य जोड़ हैं। हड्डियों के अतिरिक्त हमारी रक्तवाहिनी शिराएँ भी आपस में अनेक स्थानों में एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। इन सबों के अतिरिक्त हमारे शरीर का सबसे महत्वपूर्ण भाग हमारा मेरुदण्ड है। जिस व्यक्ति का मेरुदण्ड जितना ही लचकदार होगा, वह व्यक्ति उतना ही स्वस्थ रहेगा। ज्यों-ज्यों मनुष्य की अवस्था बढ़ती जाती है, उसका मेरुदण्ड अधिकाधिक कड़ा होता चला जाता है। इस कड़ापन के आ जाने के कारण ही शरीर अनेक रोगों का केन्द्र बन जाता है। मेरुदण्ड के साथ सम्पूर्ण शरीर की हड्डियाँ, उनके जोड़ो और रक्त वाहिनी शिराओं को अत्यन्त लचकदार बनाये रखने के लिये व्यायाम से बढ़कर दूसरी महौषधि नहीं है। शरीर को सुन्दर स्वस्थ तथा नीरोग बनाये रखने के लिये ही हमारे ऋषियों ने आसनों तथा व्यायाम की मुद्राओं का आविष्कार किया था। प्राचीन काल में इन्हीं के उपयोग से अधिकांश व्यक्ति स्वस्थ तथा निरोग रहते थे।

व्यायाम से अनेक लाभ होते हैं। हमारे शरीर के अन्दर रक्त संचालन क्रिया ठीक से होने लगती है, फेफड़े में शुद्ध वायु का प्रवेश होता है, रक्त की गन्दगी दूर होती है। शरीर में आलस्य नहीं रहता। हम अपने जीवन के आवश्यक कार्यों को सुचारु रूप से सम्पन्न कर सकते हैं। व्यायाम से पाचन शक्ति भी ठीक रहती है। शरीर के स्वस्थता के साथ-साथ मस्तिष्क भी सबल हो जाता है। जब शरीर स्वस्थ नहीं रहता, तब तक हमारा मस्तिष्क भी शक्तिशाली नहीं बन सकता। स्वास्थ्य रक्षा के नियमों के अन्तर्गत अगला स्थान आता है स्वच्छता अर्थात सफाई का। शरीर के प्रत्येक अवयव के नियमित सफाई का महत्व, कपड़ों की सफाई का महत्व अपने आसपास के वातावरण को साफ रखने का महत्व, तो बचपन से ही बच्चों को समझाना चाहिये ताकि आगे चलकर साफ-सुथरा रहना उनकी आदत बन जाये और वे स्वस्थ रहे। गन्दगी बहुत सारी रोगों की जड़ होती है।

इस सिलसिले में अन्तिम और महत्वपूर्ण बात आती है मानसिक शान्ति की। शरीर और मन दोनों का चोली-दामन का साथ है। एक यदि अस्वस्थ है तो दूसरा स्वस्थ नहीं रह सकता। मन में क्रोध, घृणा, द्वेष आदि हटाकर प्रफुल्लित रहने की कोशिश करनी चाहिये। मन में किसी प्रकार का तनाव कभी भी नहीं रहने देना चाहिए। मन यदि तनाव रहित और प्रफुल्लित रहेगा तो शरीर भी स्वस्थ रहेगा।

आज हमारी सरकार भी स्वास्थ्य रक्षा के प्रति जागरुक है। स्कूलों में खेल-कूद और व्यायाम को बढ़ावा देकर बच्चों में इनके प्रति दिलचस्पी बढ़ाई जा रही है। गाँव-गाँव में स्वास्थ्य सुधार केन्द्र खोले गये हैं, जहाँ लोगों को अच्छे सेहत का महत्व समझाया जा रहा है। बच्चों में रोगों की रोकथाम के लिये टीका आदि की समुचित व्यवस्था की गई है। लोगों को शुद्ध आहार उपलब्ध कराने के लिये सरकार भोजन सामग्री में मिलावट के विरुद्ध अभियान चला रही है। भ्रमणशील चिकित्सालय भी चलाये जा रहे हैं। यूँ तो गाँव की हरियाली, खुला वातावरण, शहरों में पार्क गार्डन सेहत के लिये उपयोगी

है ही, परन्तु उचित शिक्षा के अभाव में इसका लाभ जितना उठाना चाहिये नहीं हो पा रहा है। इस अभियान को और तीव्र करने की आवश्यकता है।

शरीर से पूर्णतया स्वस्थ व्यक्ति के ऊपर सांसारिक रागद्वेष का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता और जीवन संघर्ष को वह बड़े सहज भाव से ग्रहण करता है। शारीरिक स्वस्थता मानसिक विकास का साधन होता है। स्वस्थ शरीर में ही एक स्वस्थ मस्तिष्क और एक पवित्र आत्मा का निवास होता है।

अपने जीवन के सर्वतोमुखी विकास तथा संसार के वास्तविक आनन्द की प्राप्ति के लिये समय रहते ही अपने सेहत की ओर ध्यान देना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है क्योंकि "सेहत हजार नियामत है।"

वराहमिहिर की 'वृहत्संहिता' के वृक्षायुर्वेदाध्याय (अ 54) में लिखा है कि घर और बगीचों में अरिष्ट, अशोक, पुन्नाग, शिरीष और प्रियंगु का लगाया जाना मंगलकारी है। काश्यप ने देवालय, उद्यान, गृह एवं उपवन में चम्पक, उदुम्बर तथा पारिजात का लगाया जाना स्वास्थ्यवर्द्धक बताया है। अग्निपुराण में उत्तर की ओर प्लक्ष, पूर्व की ओर वट, दक्षिण की ओर आम और पश्चिम की ओर अश्वत्थ लगाने की सम्मति दी है। कंटकद्रुम मकान के दक्षिण की ओर लगाना अच्छा बताया है। अन्य वृक्ष जो लगाने के लिये बताये गये हैं, वे हैं—अरिष्टाशोक, पुन्नाग, शिरीष, प्रियंगु, अशोक, कदली, जम्बु, बकुल और दाड़िम।

कादम्बिनी, जून 1992 से साभार

पादप-दर्शन

आर० सी० श्रीवास्तव

वृक्ष की आकांक्षा होती है कि,
जब उसे काट दिया जाय,
तो, उसमें से पुनः नव कोपलें
विस्फुटित हो ;
और
इसकी सुकोमल शाखाएँ सदैव लहराती रहें ।।

पौधा फूलता है,
जब उसे अपने अस्तित्व का खतरा,
महसूस होता है ;
वह अपनी वंश परम्परा को बरकरार
रखने के लिए,
तुरन्त फूल-फल देने को उद्यत हो जाता है ।।

पौधा हँसता है,
जब उसका प्यारा मानव,
प्यार से उसे दुलारता है,
जैसे बूढ़े बाप का बेटा,
सादर स्नेह देता है अपने पिता को ;

पौधे की आंखें भर आती है,
जब प्रदूषित हवा उसके अंग-प्रत्यंग को,
ढक देती है ;
पौधा रोता है,
जब उसका प्यारा मानव,
उसे काटने को उद्यत होता है ।

卐

हम टूटे रिश्ते को जोड़ रहे हैं

नवीन चौधरी

मानव और पौधे का युग-युग का रिश्ता
निष्ठुर कुछ दस्यु आज तोड़ रहे हैं।

फिर भी क्या जानें किस आशा के बल पर
हम टूटे रिश्ते को जोड़ रहे हैं!!

जाने क्या बीत रही पवन और अम्बर पर
कुछ लोग आज विष-फुहार छोड़ रहे हैं।

बेशुमार मल, विकार के लिए जगह नहीं
तो उनको भी नदियों से जोड़ रहे हैं।।

अमृत के घट कल तक जहाँ-तहाँ बिखरे थे
कुछ लोग आज उन घटों को फोड़ रहे हैं।

नदियों की धारा धरती को जीवन देती
कोई धारा को क्यों बलात मोड़ रहा है।

जीवन की लड़ियाँ और कड़ियाँ बिखर रही
पर एक सबल हाथ उन्हें जोड़ रहा है।

:०:

समाचार

हिन्दी दिवस समारोह, 12 व 13 सितम्बर 1991

दि० 12 सितम्बर 1991 को हिन्दी दिवस समारोह डा० विजयकृष्ण, वैज्ञानिक, 'एसडी' की अध्यक्षता में हुआ। इस अवसर पर वाद-विवाद व निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन हुआ। कार्यालय के अन्य वरिष्ठ अधिकारियों ने हिन्दी के प्रयोग के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किए।

दि० 13 सितम्बर 1991 को श्री ए०आर०के० शास्त्री, वैज्ञानिक 'एसइ' ने समारोह की अध्यक्षता की। डा० विश्वनाथ मुद्गल, वैज्ञानिक 'एसइ' ने वनस्पति वाणी : 1991 का विमोचन किया। प्रतियोगिताओं के लिए निर्णायक मण्डल से प्राप्त परिणाम की विधिवत घोषणा श्री शास्त्री जी ने की जो निम्नलिखित है :

अहिन्दी भाषी समूह (वाद-विवाद)

1. श्री रवीन्द्र नाथ चटर्जी	प्रथम
2. श्री विश्वनाथ साहा	द्वितीय
3. श्री ए० के० चट्टोपाध्याय 4. श्री एम० के० गांगुली	तृतीय तृतीय

अहिन्दी भाषी समूह (निबन्ध)

1. श्री रवीन्द्र नाथ चटर्जी	प्रथम
2. श्री ए० के० चट्टोपाध्याय	द्वितीय
3. श्री अशोक बसु	तृतीय

हिन्दी भाषी समूह (निबन्ध)

1. श्री संजीव कुमार	द्वितीय
2. श्री आनन्द कुमार	,,
3. श्री एस आर काम्बले	तृतीय

हिन्दी कार्यशाला

दि० 1-3 जून 1992 को आयोजित हिन्दी कार्यशाला का उद्घाटन डा० बी० डी० शर्मा, निदेशक, भा व स ने किया। दि० 3 जून 1992 को डा० विजय कृष्ण, वैज्ञानिक 'एसडी' ने प्रशिक्षार्थियों के प्रमाण-पत्रों का वितरण किया। डा० डी० एम० वर्मा एवं श्री के०आर० गौड़ ने अपने विचार प्रकट किए। कार्यशाला में भाग लेने वाले प्रशिक्षार्थियों द्वारा निष्पादित कार्य के आधार पर निम्नलिखित को विशेष योग्यता का प्रमाण पत्र दिया गया :

1. श्रीमती जयश्री साहा	प्रथम
2. श्री मृणाल कान्ति देव	द्वितीय
3. श्री मिहिर कुमार गांगुली	तृतीय
4. श्रीमती झरना चक्रवर्ती	,,

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के कुछ महत्वपूर्ण नये प्रकाशन

पत्रिका

(दी बुलेटिन ऑफ दी बाटनिकल सर्वे आफ इण्डिया वेजिटेशन, टैक्सोनोमी, इकोलोजी, साइटोलोजी व आर्थिक वनस्पति के अध्ययन सम्बन्धी पादप विज्ञान की तिमाही पत्रिका)

खण्ड XXV (1983) सिलवर जुबिली वाल्युम : रू० 250/- $ 80.00 या £ 40.00

द्विशतवार्षिकी खण्ड

खण्ड XVIII (1986) } : रू० 500/- या $ 160.00 या £ 80.00
खण्ड XXIX (1987) } : रू० 828/- या $ 260.00 या £ 132.00

पिछले खण्ड भी उपलब्ध है खण्ड XXXII (1990) मुद्रणाधीन

फ्लोरा आफ इण्डिया सीरिज

फेसिकल 19 (एलेंजिएसी बर्मेनिएसी, कोक्लोस्पर्मेसी, कोनेसी, लार्डिजेवेलेसी, लोबेलिएसी, मैल्वेसी व निसेसी (पेज 1-251), 1988, रू० 280/- या $ 60.00 या £ 40.00

फेसिकल 20 (बाक्लेयेसी. केबोम्बेसी, नेलुबोनेसी, निम्फिएसी, सेबिएसी, स्टैकिरेसी, सिमप्लोकेसी, टेट्रासेंट्रेसी, जाइगोफिलेसी) (पेज 1—194 + 13) 1990 रू० 84/- या $ 28.00 या £ 20.00

स्टेट फ्लोरा एनेलसिस : सीरिज 2

फ्लोरा आफ तमिलनाडु, एडिटेड बाय ए एन हेनरी वी० चित्रा एण्ड एन पी बालकृष्णन वाल्युम 3 (पेज 1—171) 1989 : रू० 84/- या 2600 या £ 12.00 (खण्ड 1 व 2 भी उपलब्ध हैं)

फ्लोरा आफ राजस्थान, एडिटेड बाय बी बी शेट्टी व बी० सिंह वाल्युम 1 (पेज 1—451) 16 रंगीन व 20 श्वेत—श्याम फोटो 1987 रू० 400/- या $ 80.00 या £ 60.00

वाल्युम 2 (पेज 453-860) 1991 : रु० 144/- $ 42.00 या £ 20.00

(खण्ड 3 मुद्रणाधीन)

फ्लोरा आफ सौराष्ट्र—पी बी बोले एण्ड जे एम पाठक

पार्ट II (पेज 1—302 + 4) 1988 : रु० 104.00 $ 32 3200 £ 1400

पार्ट III (पेज 303-553) 1988 : रु० 80/- $ 24.00, या £ 12.00

फ्लोरा आफ केरल—ग्रासेज : पी वी श्री कुमार एवं वी जे नायर (पेज 1-470, 96 इलस्ट्रेशन्स) 1991 रु० 268/- या $ 56.00 या £ 30.00

डिस्ट्रिक्ट फ्लोराज : सीरिज 3

फ्लोरा आफ नल्लमलै—जे एल इलिस, वाल्युम । (पेज 1-220, 9 फोटो + 1 मैप) 1987 : रू० 72/- या $ 24.00 या £ 12.00

वाल्युम 2 (पेज 221—490) 1990 : रू० 76/- या $ 24.00 या £ 12.00

फ्लोरा आफ पालघाट डिस्ट्रिक्ट (इनक्लुडिंग साइलेंण्ट वैली नेशनल पार्क, केरल) इ वजूवेलु (पेज 1—646 + 15 श्वेत-श्याम फोटो) 1990 रू० 276/- या $ 56.00 या £ 36.00

फ्लोरा आफ नासिक डिस्ट्रिक्ट — पी लक्ष्मीनरसिंहन एण्ड बी० डी० शर्मा (पेज 1—644 + 8 श्वेत श्याम फोटो + 6 रंगीन फोटो) 1991 रू० 320/- या $ 64.00 या £ 36.00

विशेष व विविध प्रकाशन : सीरिज 4

आइकोन्स राक्सबर्गिएनी

फेसिकल II * (पेज 1-51) 1968 एण्ड III * (पेज 1-49) 1969 रू० 16/- या $ 4.00 या £ 2.00 प्रति फेसिकल,

फेसिकल IV* (पेज 1-57) 1970 V* (पेज 1-52) 1971 एण्ड VI (पेज 1-51) 1973 : रू० 20/- या $ 6.00 या £ 300 प्रति फेसिकल,

फेसिकल VII (पेज 1-51) 1976 एण्ड VIII (पेज-1-53) 1978 रू० 32/- या $ 8.00 या £ 4.00 प्रति फेसिकल

फाइकोलोजिया इण्डिका—के ऐस श्रीनिवासन, वाल्युम I * (पेज 1-52) 1969 : रू० 31/- या $ 7.00 या £ 300, वाल्युम II (पेज1-60) 1973 : रू० 56/- या 13.00 या 6.00

भारत की वनस्पति*—हिन्दी प्रकाशन (पेज 1-179) 1984 : रू० 35.00.

टाइप कलेक्शन्स इन दी सेन्ट्रल नेशनल हर्बेरियम—यू पी समाद्दार : वाल्युम II पेज 1-128) 1991 : रु० 64/- या $ 22.00 या £ 16.00

इकोनामिक प्लांट्स आफ इण्डिया—एम पी नायर एट आल, वाल्युम I (पेज 1-159) 1989 : रू० 74/- या $ 2400 या £ 12

नेटवर्क आफ बाटनिक गार्डेन्स—सम्पादित एम पी नायर (पेज 1-272, 166 फोटो) 1987 : रू० 460/- या $ 80.00 या £ 60.00,

रेड डाटा बुक आफ इण्डियन प्लांट्स — एडिटेट बाय एम पी नायर एण्ड ए आर के शास्त्री वाल्युम I (पेज 1-383, 8 फोटो) 1987 : रू० 160/- या $ 48 या £ 22.00,

वाल्युम II (पेज 1-273, 6 फोटो) 1988 : रु० 132/- या $ 40.00 या £ 18.00,

वाल्युम III (पेज 1-278, 4 फोटो) 1989 : रु० 188/- या $ 56 या £ 24

फ्लोरे इण्डिके इन्यूमरेशियो : मोनोकोटिलिडोनी—एस कार्तिकेयन, एस के जैन, एम पी नायर एण्ड एम संजप्पा (पेज 1-435 + 3) 1989 रु० 160/ या $ 48.00 या £ 22.00,

ए डाइरेक्टरी आफ बाटनिक गार्डेन्स एण्ड पार्क्स इन इण्डिया—आर के चक्रवर्ती एण्ड डी पी मुखोपाध्याय (पेज 1-192, 8 फोटो) 1990 : रु० 132/- या $ 40.00 या £ 180

मैनग्रोव्स इन इण्डिया—आइडेंटिकेशन मैनुअल एल के बनर्जी, ए आर के शास्त्री, एम पी नायर (पेज 1-113, 30 फोटो) 1989 : 168/- या $ 52.00 £ 24.00

ए मैनुअल फार हर्बेरियम कलेक्शन्स—आर आर राव व बी डी शर्मा(पेज 1-20 + 1) 1990 : रु० 8/-

उपरोक्त प्रकाशन निर्देशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पी-8, ब्रेबोर्न रोड, कलकत्ता-700001. भारत से खरीद की जा सकती है। प्रकाशन वी पी पी से नहीं भेजा जाता है। उचित मूल्य धनादेश द्वारा प्रकाशन सम्पादक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण को अग्रिम भेजते हुए अपना नाम व पता स्पष्ट लिखें। ड्राफ्ट "एकांउट्स आफिसर, पी ए ओ (बी एस आइ एण्ड जेड एस आई) कलकत्ता" के पक्ष में प्रकाशन अधिकारी को उपरोक्त पते पर प्रेषित करें।

आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्म्या देम
द्यावापृथिवी विश्वरूपे
आ मा गन्तां पितरा मातरा चा मा
सोमोऽअमृतत्वेन गम्म्यात्

एक सुन्दर गोलाकार मांसल पौधा (Echinocactus grusonii)

बैम्बूसा वेंट्रिकोसा (Bambusa ventricosa)

फूल एवं फलों से भरा **एडिनियम ओडेसम** (Adenium Odesum) का पौधा

निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पी-8, ब्रेबोर्न रोड, कलकत्ता-700 001 द्वारा प्रकाशित
एवं अरुण प्रिंटिंग प्रेस, 9-बी, सिकदरपारा स्ट्रीट, कलकत्ता-7 (फोन : 38-4201) द्वारा मुद्रित ।